॥ श्रीहरिः ॥

2066

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR (SINCE 1923)

गीताप्रेस, गोरखपुर

2066

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

संस्कृतिकी छटाके दर्शन होते हैं, जो आज दुर्लभ हो रहा है।

भक्तमाल परमभागवत श्रीनाभादासजी महाराजकी काव्यमयी रचना है। इसमें चारों युगों, विशेषकर कलियुगके भक्तोंका बड़े ही रोचक ढंगसे वर्णन हुआ है। वास्तवमें भक्तमाल कई हैं। श्रीनाभादासजीके पूर्व तथा पश्चात् भी भक्तोंके पावन चरितोंके कई अन्य संग्रह भक्तमाल नामसे प्रकाशित हुए हैं। श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने भी 'भक्तमाल उत्तरार्ध' नामसे एक ग्रन्थ बनाया, जिसमें श्रीनाभादासजीके भक्तमालमें वर्णित भक्तोंके बाद हुए अर्वाचीन भक्तोंके चरित संकलित हैं। इन सभीमें नाभादासके भक्तमालकी विशेष प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा है। इसी भक्तमाल ग्रन्थपर श्रीप्रियादासजीकी 'भक्तिरसबोधिनी' टीका सन्तोंमें सर्वाधिक समादृत है, जिसे यहाँ साथमें समाहित किया गया है।

यह भक्तमाल कई स्थानोंसे प्रकाशित है, इनमेंसे श्रीरामानन्दपुस्तकालय सुदामाकुटी श्रीधामवृन्दावन (मथुरा)-से प्रकाशित चार खण्डोंवाला भक्तमाल, श्रीसद्गुरु पुस्तकालय श्रीभक्तमाल आश्रम वंशीवट वृन्दावन (मथुरा)-से प्रकाशित एकखण्डात्मक भक्तमाल, श्रीअखिलभारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, परशुरामपुरी (सलेमाबाद) तथा श्रीश्रीजी मन्दिर वृन्दावनसे प्रकाशित एक खण्डवाला भक्तमाल और कल्याणके भक्तचरितांकमें प्रकाशित मूल भक्तमालका आश्रय लेकर मूलपाठ आदिका निर्धारण किया गया है।

प्रस्तुत भक्तमालके प्रकाशनकी प्रेरणा मलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज तथा भक्तमाली साकेतवासी श्रीनारायणदासजी (बक्सरके पूज्य मामाजी)-के द्वारा प्राप्त हुई। इन दोनों महानुभावोंका विशेष आग्रह था कि गीताप्रेसद्वारा भक्तमालका प्रकाशन किया जाय।

अतः कुछ समय पूर्व इसे ग्रन्थरूपमें प्रकाशित करनेकी योजना बनी। तदनुसार सामग्री-संचयन तथा लेखन आदिका कार्य प्रारम्भ किया गया, लेकिन सामग्रीका परिमाण इतना बढ़ गया कि वह तत्काल प्रकाशित होना सम्भव नहीं था, उन दिनों पाठक महानुभावोंका विशेष आग्रह था कि भक्तमालको शीघ्र प्रकाशित किया जाय। अतः शीघ्रताकी दृष्टिसे सन् २०१३ ई० में कल्याणके विशेषांकके रूपमें भक्तमाल-अंकका प्रकाशन हुआ। विशेषांककी पृष्ठ-संख्या सीमित होनेके कारण उसमें भक्तोंकी कथाको अत्यन्त संक्षेपमें ही देना पड़ा। दूसरी बात यह कि भक्तमालमें जितने भक्तोंका उल्लेख हुआ है, उनमेंसे कई भक्तोंके सम्बन्धमें सामग्री भी प्राप्त नहीं हो सकनेसे वह नहीं दी जा सकी। अब भगवत्कृपासे यथासम्भव विस्तृत व्याख्याके साथ भक्तमालको ग्रन्थरूपमें पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

आशा है पाठक-पाठिकागण इस भक्तमालको पढ़कर लाभान्वित होंगे तथा भगवद्भक्तोंके चरितसे प्रेरणा प्राप्तकर भक्तिपथपर अग्रसर होंगे, जिससे उन्हें परलोकमें सुख-शान्ति और मानव-जीवनके परम एवं चरम लक्ष्य—परमात्मप्रभुकी करुणामयी कृपा प्राप्त हो सकेगी।

अन्तमें हम अपने इस प्रयासको भगवान्के चरण-कमलोंमें अर्पित करते हुए यह मंगल कामना करते हैं—

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक। इन के पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥

—राधेश्याम खेमका

श्रीहरि:

श्रीभक्तमालकी विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

(रेखा-चित्र)

भक्तमाल—एक परिचय

(राधेश्याम खेमका)

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥

भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी अविचल स्मृति सारे पाप-ताप तथा अमंगलोंको नष्ट कर देती है और परम शान्तिका विस्तार करती है। उसीके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होती है एवं परवैराग्यसे युक्त भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है।

'**भक्तमाल**' महाभागवत श्रीनाभादासजी महाराजकी रचना है। जैसा कि इसके भक्तमाल नामसे ही स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ भक्तोंके परम पवित्र चरित्ररूपी पुष्पोंकी एक परम रमणीय मालाके रूपमें गुम्फित है और इस सरस सौरभमयी तथा कभी भी म्लान न होनेवाली सुमनमालिकाको परमात्मप्रभु श्रीहरि नित्य-निरन्तर अपने श्रीकण्ठमें धारण किये रहते हैं। भक्तमालमें भक्तोंका गुणगान है, यशोगान है और उनकी सरस लालित्यमयी लीलाका विस्तार है। भगवान् और भक्तका कैसा सम्बन्ध होना चाहिये, इसका निदर्शन हमें भक्तमाल ग्रन्थके श्रवण-मनन और पठनसे भलीभाँति ज्ञात हो जाता है। भक्तमालके श्रवण-मननसे शुष्क हृदय सरस हो जाता है और सरस हृदयमें सदाके लिये भक्तिकी लहरें आन्दोलित होती रहती हैं। यही कारण है कि श्रीमद्भागवत तथा श्रीरामकथाके प्रवक्ता आचार्यगण भक्तमालके भक्तोंका दृष्टान्त देकर सांगोपांग भक्तिरसोंको संपुष्ट करते हैं।

भगवत्प्राप्तिके संसाधनोंमें भगवान्‌के मंगलमय पावन नामके कीर्तन, उनके दिव्यरूपके चिन्तन और उनकी ऐश्वर्यमयी-माधुर्यमयी मनोरम लीलाओंके गान तथा चरित्र-श्रवणकी जितनी महिमा है, उससे भी कहीं अधिक महिमा भगवान्‌के अनन्य प्रेमी भक्तोंकी पवित्र गाथाओंके पठन, श्रवण और मननकी है। भगवान् ही जब भक्तोंकी महिमाका मुक्तकण्ठसे गान करते हैं तो ऐसे सौभाग्यशाली भक्तोंकी महिमाकी क्या सीमा! इतना ही नहीं भगवान् स्वयं कहते हैं कि मैं भक्तजनोंके पीछे-पीछे यह सोचकर निरन्तर विचरण किया करता हूँ कि उनके चरणोंकी पवित्र धूलराशि उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ—'**अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।**' (श्रीमद्भा० ११।१४।१६)

वास्तवमें भगवान् और उनके भक्तमें भेदका अभाव है—'**तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्**' (ना०भ०सू० ४१)। इसीलिये भगवान्‌का कथन है कि मेरा भक्त सम्पूर्ण लोकको पावन बना देता है—'**मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति**' (श्रीमद्भा० ११।१४।२४)। भगवत्-प्राप्तिके जितने भी मार्ग शास्त्रोंमें निरूपित हैं, उनमें भक्तिमार्गको सर्वोत्तम तथा सहज मार्ग बताया गया है। भगवान् कहते हैं कि सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है—'**श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥**' (गीता ६।४७) भक्तों और उनकी भक्तिका मार्ग सबके लिये कल्याणकारी है।

भगवान्‌के प्रिय भक्तोंकी पुनीत गाथाएँ अनादिकालसे विश्वके इतिहासमें गायी जा रही हैं और अनन्त कालतक गायी जाती रहेंगी। ऐसे भक्तोंका नामस्मरण, उनके चरित्रोंका मनन, उनके उपदेशोंका पालन और उनकी भगवत्प्रेमविषयक रहनी-करनीका अनुसरण करनेसे अन्तःकरण पवित्र हो जाता है और भगवच्चरणारविन्दोंमें सहज ही अनुदिन वर्धमान अनुराग उत्पन्न हो जाता है। भक्तगाथाएँ सदा ही नवीन हैं, मंगलमय हैं, कल्याणमय हैं, सदा सेवनीय हैं और परम शान्ति प्रदान करनेवाली हैं। भगवान्‌में अनन्त गुण हैं और उनके प्रेमी भक्तोंमें भी अपार गुण हैं, उन गुणोंका जो चिन्तन और स्मरण करता है, उस व्यक्तिको स्वाभाविक रूपसे ये गुण प्राप्त हो जाते हैं। अपने जीवनको उज्ज्वल, सद्गुणोंसे युक्त तथा भक्तिमय बनानेके लिये भक्तोंके चरित्ररूपी सुधासिन्धुमें अवगाहन करना चाहिये। भगवत्प्राप्तिके

लिये साधन करनेवालोंको भक्तोंके चरित्रोंके पठन, श्रवण और मनन करनेसे बहुत लाभ होता है। भक्तोंके चरित्र मनको आह्लादित करते हैं और संसारमें महान् कष्टसे मुक्ति दिलाते हैं।

जबसे भगवान् हैं, तभीसे उनके भक्त हैं और जबसे भगवान्‌की कथा है, तभीसे भक्तोंकी कथाका शुभारम्भ है। अकेले भगवान्‌की कोई लीला भी बन नहीं सकती। भक्त भगवान्‌के लीला-सहचर हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि जिस प्रकार भगवान् और उनकी कथा अनादि है, उसी प्रकार भक्त और उनकी कथा भी अनादि है। भक्त और भगवान्‌का नित्य साहचर्य है। यह बड़ी विलक्षण बात है कि स्वयं परमात्मप्रभु जब शिवरूप धारण करते हैं तो वे रामरूपके भक्त बन जाते हैं तो कभी रामरूपमें शिवकी उपासना करने लगते हैं। एक ही प्रभु भक्तकी भावनाके अनुसार अनेक रूपोंमें होकर उनके इष्टका रूप धारणकर परस्पर एक-दूसरेके भक्त बन जाते हैं और एक-दूसरेको वर भी प्रदान करते हैं। भगवान्‌की यह लीला भक्तको आह्लादित करनेके लिये होती रहती है।

यद्यपि वेदों, पुराणों आदि सत्-शास्त्रोंमें भक्त और भगवान्‌के चरित्र बड़े ही मनोरम रूपमें वर्णित हैं और अनेक भक्तकवियोंने स्वतन्त्र रूपसे भी संस्कृत आदि भाषाओंमें भक्तोंके मनोरम चरित्र प्रस्तुत किये हैं तथापि श्रीनाभादासजीके भक्तमालमें जिन-जिन भक्तोंकी कथा आयी है, वह बड़ी ही सरस, कल्याणकारिणी और मनको आनन्दित करनेवाली है। भक्तमाल सामान्य रचना नहीं है, अपितु यह एक आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है। तपस्वी, सिद्ध एवं महान् संतकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वादसे इस ग्रन्थका प्राकट्य हुआ है, इसीलिये इसकी इतनी महिमा है।

भक्तमालके प्राकट्यकी रोचक कथा

भक्तमाल भक्तिसाहित्यका अनूठा अनमोल रत्न है। इसकी यह विशेष बात है कि यह भक्तोंको अतिप्रिय होनेके साथ ही भगवान्‌को भी परम प्रिय है। सन्तोंकी तो यह भी धारणा है कि भगवान् अपने नित्य धाममें भक्तमालका सदा स्वाध्याय करते हैं। श्रीभक्तमालके प्रधान श्रोता भगवान् ही हैं। जैसे भक्तोंको भगवान्‌का चरित्र अतिप्रिय है, वैसे ही भगवान्‌को भी भक्तोंका चरित्र परम प्रिय है। सत्य तो यह है कि भगवान् अपनेसे अधिक भक्तोंको आदर देते हैं—**'मोतें संत अधिक करि लेखा।'** भावुक भक्तोंकी मान्यता है कि भगवान्‌से भी अधिक महिमा उनके भक्तोंकी है—**'मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥'**

भक्तमालके सबसे प्राचीन टीकाकार श्रीप्रियादासजी भक्तमाल ग्रन्थका प्राकट्य कैसे हुआ, इसे बताते हुए कहते हैं कि एक बारकी बात है श्रीनाभादासजीके पूज्य गुरुवर श्रीअग्रदासजी महाराज भगवान् श्रीसीतारामजीकी मानसी-उपासनामें लीन थे और उनके शिष्य श्रीनाभाजी धीरे-धीरे उनको पंखा झल रहे थे। उसी समय अग्रदासजीका एक शिष्य जहाजद्वारा समुद्रकी यात्रा कर रहा था। उसका जहाज एकाएक संकट (भँवर)-में फँस गया और रुक गया। उस समय उस संकटसे मुक्त करनेके लिये शिष्यने अपने गुरुजी श्रीअग्रदासजीका स्मरण-ध्यान किया। उसका फल यह हुआ कि गुरुजीका ध्यान भी शिष्यकी ओर गया और उनकी मानसी-आराधनाका ध्यान टूट गया। विलक्षण बात यह हुई कि इस ध्यान-भंगकी बात नाभाजी भी समझ गये, तब उन्होंने अपने पंखेकी वायुके झोंकेसे रुके हुए जहाजको भँवर-संकटसे पार कर दिया, जहाज समुद्रमें यथावत् चल पड़ा, तब नाभाजी गुरुजीसे बोले—गुरुदेव, वह जहाज पुनः चल पड़ा है। अत: अब आप पहलेके ही समान भगवान्‌के ध्यानमें लग जाइये। यह सुनकर अग्रदेवजीने आँखें खोलीं और कहा—कौन बोला? नाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—वही आपका दास, जिसे आपने अपना प्रसाद दे-देकर पाला है।

नाभाजीकी इस बातको सुनकर अग्रदासजीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा और वे मन-ही-मन सोचने लगे कि ओह, इसकी ऐसी ऊँची स्थिति हो गयी कि यह मेरी मानसी-सेवातक पहुँच गया! आश्चर्य है कि इसने यहाँ बैठे-ही-बैठे दूरस्थित

समुद्रमें होनेवाली घटनाका प्रत्यक्ष कर लिया और यहींसे जहाजकी रक्षा कर ली! फिर विचार करते ही उनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे यह जान गये कि सन्तोंकी सेवा तथा उनसे प्राप्त प्रसाद-भक्षणकी ही यह महिमा है, इसीसे इसे ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है, तब श्रीअग्रदासजीने नाभाजीको आज्ञा देते हुए कहा—***'यह भई तोपै साधु कृपा उनहीं को रूप गुन कहो हिये भाव को'*** वत्स, तुम्हारे ऊपर यह साधुओंकी कृपा हुई है। अब तुम उन्हीं साधु-सन्तोंके गुण, स्वरूप तथा उनके हृदयके भावोंका गान करो।

गुरुदेवकी इस आज्ञाको सुनकर नाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—प्रभो! मैं भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रोंको तो कुछ गा भी सकता हूँ, किंतु भक्तोंके चरित्रोंका आदि-अन्त पाना तो बड़ा कठिन है, भला मैं भक्तिके रहस्यको कैसे समझ सकता हूँ? तब अग्रदासजी बड़े प्रेमसे उन्हें समझाते हुए बोले—जिन्होंने तुम्हें मेरी मानसी-सेवामें प्रवेश कराया, जिन्होंने तुम्हें समुद्रमें जहाजको दिखाया, जिन्होंने यहींसे पंखेकी हवासे जहाजको आगे बढ़ा दिया, वे ही भगवान् तुम्हारे हृदयमें प्रविष्ट होकर भक्तोंके तथा अपने भी सब रहस्योंको खोलकर बता देंगे—***'कही समुझाइ वोई हृदय आइ कहैं सब जिन लै दिखाय दई सागर में नाव को'*** (प्रियादासजी, भक्तिरसबोधिनी टीका)।

गुरुदेवने नाभाजीकी आशंकाको दूर कर दिया। बस अब क्या था, उन्होंने गुरुदेवकी प्रेरणा प्राप्तकर उनके आशीर्वादसे भक्तमालकी उद्भावना कर डाली और इस घटनाका वर्णन उन्होंने अपने ग्रन्थके प्रारम्भमें इस प्रकारसे किया—

(श्रीगुरु) अग्रदेव आग्या दई भक्तन को जस गाउ।
भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ॥

(भक्तमाल दोहा ४)

अर्थात् स्वामी श्रीअग्रदेवजीने मुझ नारायणदास (नाभाजी)-को आज्ञा दी कि भक्तोंके चरित्रोंका वर्णन करो, भक्तोंका यशोगान करो, क्योंकि संसारसागरसे पार उतरनेका इससे सरल कोई दूसरा उपाय नहीं है।

इस पदमें श्रीनाभाजीने अपने श्रीगुरुदेवका नामनिर्देश किया है और ग्रन्थरचनाका हेतु बताया है। भक्त और भगवान्‌में श्रीअग्रदासजीने केवल भक्तोंके यशोगानकी आज्ञा दी, कारण कि भक्तमें भक्ति, भगवान् और गुरुदेव सबका भाव निहित रहता है।

श्रीनाभादासजीने भक्तमाल ग्रन्थका प्रारम्भ मंगलाचरणके रूपमें निम्न दोहेसे किया है—

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इन के पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥

(दोहा १)

अर्थात् भगवद्भक्त, भगवद्भक्ति, भगवान् और गुरु—कहनेको तो ये चार हैं, किंतु वास्तवमें इनका स्वरूप एक ही है। इनके चरणोंमें नमस्कार करनेसे समस्त विघ्नोंका नाश हो जाता है।

मंगलाचरणका यह दोहा ही भक्तमाल ग्रन्थका सर्वस्वसार है और इसी दोहेकी भित्तिपर भक्तमालरूपी ग्रन्थ स्थित है। जैसे गायके थन देखनेमें चार हैं, लेकिन चारोंके अन्दर एक ही समान दूध भरा रहता है, वैसे ही भक्त, भक्ति, भगवान् और गुरु—ये चारों अलग-अलग दिखायी देनेपर भी सर्वदा सर्वथा अभिन्न हैं। चारोंमेंसे एकसे प्रेम हो जानेपर तीनों स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। इस दोहेमें भक्त शब्दका प्रारम्भमें प्रयोग होनेसे भक्तमालमें भक्तकी प्रधानता नाभादासजीने दिखायी है। जैसे मालामें चार वस्तुएँ मुख्य होती हैं—मणियाँ, सूत्र, सुमेरु और फुँदना (गुच्छा), वैसे ही भक्तमालमें भक्तजन मणि हैं, भक्ति है सूत्र (जिसमें मणियाँ पिरोयी जाती हैं), मालाके ऊपर जो सुमेरु होता है वे हैं गुरुदेव और सुमेरुका जो गाँठरूपी गुच्छा (फुँदना) है, वे हैं भगवान्। जिस प्रकार मालामें मणिकी विशेषतापर मालाका नामकरण होता है, यथा—रुद्राक्षमाला, तुलसीमाला आदि, वैसे ही भक्तोंकी माला होनेसे इस ग्रन्थका नाम पड़ा 'भक्तमाल'।

इस प्रकार प्रारम्भमें श्रीनाभादासजीने चार दोहोंमें मंगलाचरण करके आगे छप्पय छन्दोंमें भक्तोंके चरित्रोंकी सुन्दर महिमा गायी है। पूरा ग्रन्थ छप्पय और दोहेमें उपनिबद्ध है। इस प्रकार भक्तमालग्रन्थ भक्तिसाहित्यका एक विलक्षण काव्य है।

नाभादासजी कहते हैं कि भगवद्भक्तोंके गुण और चरित्रका वर्णन करनेसे इस संसारमें कीर्ति और सभी प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति होती है; आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—तीनों तापोंका नाश होता है तथा हृदयमें अटल रूपसे भगवान्‌का वास हो जाता है—

जग कीरति मंगल उदै तीनौं ताप नसायँ।
हरिजन को गुन बरनते हरि हृदि अटल बसायँ॥

(भक्तमाल दोहा २०८)

पुनः वे जीवोंको सावधान करते हुए कहते हैं—यदि भगवान्‌को प्राप्त करनेकी आशा है तो भक्तोंके गुणोंको गाइये, निस्सन्देह भगवत्प्राप्ति हो जायगी। नहीं तो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये गये अनेक पुण्य भुने हुए बीजकी तरह बेकार हो जायँगे (भुने हुए बीज पुनः अंकुरित नहीं होते), उनसे कल्याण न होगा, फिर जन्म-जन्ममें पछताना पड़ेगा—

(जो) हरि प्रापति की आस है तौ हरिजन गुन गाव।
नतरु सुकृत भुंजे बीज ज्यौं जनम जनम पछिताय॥

(भक्तमाल दोहा २१०)

नाभादासजी बताते हैं कि जो भक्तोंके चरित्रको गाता है, श्रवण करता है तथा उनका अनुमोदन करता है, वह भगवान्‌को पुत्रके समान प्रिय है, उसे भगवान् अपनी गोदमें बैठा लेते हैं—***'सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यों बैठै हरि की गोद'*** (दोहा २११)।

इस प्रकार भक्तोंकी महिमाको समझाते हुए नाभादासजीने जब भक्तोंके चरित्रका वर्णन करना प्रारम्भ किया तो मंगलाचरणके बाद सर्वप्रथम पहले छप्पयमें भगवान्‌के चौबीस अवतारोंका इस प्रकार वर्णन किया—

जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि-बावन।
परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जग पावन॥
बुद्ध कलक्की ब्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर।
जग्य रिषभ हयग्रीव धुरुव बरदैन धन्वंतर॥
बद्रीपति दत कपिलदेव सनकादिक करुना करौ।
चौबीस रूप लीला रुचिर (श्री) अग्रदास उर पद धरौ॥

(भक्तमाल छप्पय १)

इसी प्रकार अगले छप्पयमें उन्होंने भगवान्‌के श्रीचरणोंके चिह्नोंकी वन्दना की है और प्रार्थना की है कि रघुपतिके ये चरणचिह्न भक्तोंके लिये मंगलकारी और सदा सहायता करनेवाले हों—

अंकुस अंबर कुलिस कमल जव धुजा धेनुपद।
संख चक्र स्वस्तिक जंबूफल कलस सुधाहृद॥
अर्धचंद्र षटकोन मीन बिंदु ऊरधरेखा।
अष्टकोन त्रयकोन इंद्रधनु पुरुषविशेषा॥
सीतापति पद नित बसत एते मंगलदायका।
चरन चिह्न रघुबीर के संतन सदा सहायका॥

अगले छप्पयमें जिन द्वादश महाभागवत भक्तोंका स्मरण किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—श्रीब्रह्माजी, देवर्षि नारदजी, श्रीशंकरजी, श्रीसनकादिक, श्रीकपिलदेवजी, श्रीस्वायम्भुव मनुजी, श्रीप्रह्लादजी, श्रीविदेहराज जनकजी, श्रीभीष्मपितामहजी, श्रीबलिजी, श्रीशुकदेवजी तथा श्रीधर्मराजजी। इसके बादके छप्पयमें भगवान् नारायणके विष्वक्सेन, जय, विजय, प्रबल, बल, नन्द, सुनन्द, सुभद्र आदि सोलह पार्षदोंका उल्लेख हुआ है। तदनन्तर जिन भक्तोंका उल्लेख हुआ है, उन्हें नाभाजीने 'हरिवल्लभ' नाम दिया है और उसके अन्तर्गत लक्ष्मी, गरुड, सुनन्द, हनुमान्, जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण, जटायु, ध्रुव, अम्बरीष, विदुर, अक्रूर, सुदामा, चन्द्रहास, चित्रकेतु, गज-ग्राह, पाण्डव, कुन्ती तथा द्रौपदी आदिका स्मरण किया है।

आगेके छप्पय संख्या १० में नौ योगेश्वरों, श्रुतिदेव, मुचुकुन्द, प्रियव्रत, पृथु, परीक्षित्, सूत, शौनकादि ऋषि, मनुपत्नी शतरूपा, कर्दमपत्नी देवहूति, सुनीतिजी, दक्षकन्या सतीजी, देवी मदालसा, व्रजगोपियाँ आदिका उल्लेख है।

पुनः आगेके छप्पयोंमें २७ छप्पयतक प्राचीनबर्हि, सत्यव्रत, रहूगण, सगर, भगीरथ, महर्षि वाल्मीकि, रुक्मांगद, हरिश्चन्द्र, भरत, दधीचि, सुधन्वा, शिबि, बलिपत्नी विन्ध्यावली, मोरध्वज, अलर्क, इक्ष्वाकु, गाधि, रघु, शतधन्वा, रन्तिदेव, मान्धाता, निमि, भरद्वाज, ययाति, दिलीप, याज्ञवल्क्य, नवधाभक्तिके आचार्य, अठारहोंपुराण, स्मृतियोंके प्रवर्तक मनु, अत्रि, हारीत, याज्ञवल्क्य, गौतम, वसिष्ठ, दक्ष, क्रतु तथा पराशर आदि ऋषि-महर्षियों, भगवान् श्रीरामके सचिवों

तथा श्रीरामके सहचरवर्ग, नन्द आदि नौ नन्दों, व्रजवासीगणों, भगवान् कृष्णके रक्तक, पत्रक, मधुकण्ठ आदि षोडश सखाओं, सप्तद्वीपके भक्तों, जम्बूद्वीपके भक्तों, भगवान्‌के द्वारपालके रूपमें प्रतिष्ठित रहनेवाले इलापत्र, शेषनाग, पद्म, शंकु, कम्बल, वासुकि, कर्कोटक तथा तक्षक नामवाले अष्टनागों आदिका वर्णन किया है।

इस प्रकार भक्तमालके प्रारम्भिक २७ छप्पयोंमें सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापरमें हुए भक्त-चरित्रोंका वर्णन हुआ है। आगे छप्पय २८ से अन्ततक पूरे भक्तमालमें कलियुगके भक्तोंका वर्णन है।[१] २८वें छप्पयमें नाभादासजी बताते हैं कि जिस प्रकार पहले तीन युगोंमें भगवान्‌ने चौबीस अवतार धारण किये, उसी प्रकार कलियुगमें भक्तिकी प्रतिष्ठा करनेवाले आचार्योंका चतुर्व्यूह प्रकट हुआ। यथा—श्रीसम्प्रदायके सम्वर्धक दक्षिण भारतमें श्रीरामानुजाचार्य, उत्तर भारतमें श्रीरामानन्दाचार्य, रुद्रसम्प्रदायके सम्वर्धक आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी, ब्रह्मसम्प्रदायके सम्वर्धक श्रीमध्वाचार्यजी तथा सनकादिक सम्प्रदायके सम्वर्धक श्रीनिम्बार्काचार्यजी हुए। इन आचार्योंने जन्म लेकर स्वयं सत्कर्मों एवं सदाचारपूर्ण आचरण करके भागवद्धर्मकी सुदृढ़ प्रतिष्ठा की और कलियुगी जीवोंको भक्तिका मार्ग दिखाकर उनपर अपार कृपादृष्टि की। मूल छप्पय इस प्रकार है—

(श्री) रामानुज ऊदार सुधानिधि अवनि कल्पतरु।
बिष्नुस्वामि बोहित्थ सिंधु संसार पार करु॥
मध्वाचारज मेघ भक्ति सर ऊसर भरिया।
निम्बादित्य अदित्य कुहर अग्यान जु हरिया॥
जनम करम भागवत धरम संप्रदाय थापी अघट।
चौबीस प्रथम हरि बपु धरे (त्यों) चतुर्व्यूह कलिजुग प्रगट॥

(भक्तमाल छप्पय २८)

आगेके छप्पयोंमें इन सम्प्रदायोंके आचार्योंका तथा उनकी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा और उनके द्वारा बताये गये उपदेशोंका वर्णन है। तदनन्तर श्रुतिप्रज्ञ, श्रुतिदेव, लालाचार्य, भावानन्द, अनन्तानन्द, रंगजी, पयहारी श्रीकृष्णदास, कील्हदेव, अग्रदास, शंकराचार्य[२], नामदेव, जयदेव, बिल्वमंगल, ज्ञानदेव, कुलशेखर, कर्माबाई, जयमल, श्रीधरस्वामी, साक्षीगोपालभक्त, रैदास, कबीरदास, पीपा, धन्ना, सुखानन्द, नरहरियानन्द, नित्यानन्द, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, केशवभट्ट, विट्ठलनाथ, नारायणभट्ट, रूपसनातन, हितहरिवंश गोस्वामी, स्वामी हरिदास, जीवगोस्वामी, सदन कसाई, राँका-बाँका, कुम्भनदास, विद्यापति, नन्ददास, मीराबाई, गोस्वामी तुलसीदास, नारायणदास, छीतस्वामी, मधुकरिया भक्त, करमैतीबाई, मधुसूदनसरस्वती, लक्ष्मणभट्ट, गोविन्ददास भक्तमाली, श्रीहरिदास तथा श्रीलालमती आदि अनेकों भक्तोंकी नामावली और उनके मंगलमय पावन चरितका स्मरण किया गया है।

भक्तमालके चरित अत्यन्त रोचक तथा भगवद्भक्तिसे भरे हुए हैं। उसमें वर्णित तथा प्रियादासजीद्वारा विवेचित एक भक्त **करमैतीबाई**का पावन चरित दृष्टान्तके रूपमें यहाँ प्रस्तुत है—

पण्डित परशुरामजी जयपुरके अन्तर्गत खण्डेलाके सेखावत सरदारके राजपुरोहित थे। इनकी पुत्री करमैतीका मन बचपनसे ही भगवान्‌में लग गया था। वह बालिका निरन्तर श्रीकृष्णका ध्यान तथा नाम-जप

---

१. इसी दृष्टिसे भक्तमालके कुछ संस्करणोंमें पूर्वार्ध और उत्तरार्ध रूपसे भी भक्तमालका विभाजन किया गया है। २७वें छप्पयतक पूर्वार्ध और उसके आगे उत्तरार्ध।

२. **उतसृंखल अग्यान जिते अनईस्वरबादी। बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी॥**
बिमुखनि को दियो दंड ऐंचि सन्मारग आने। सदाचार की सींव बिस्व कीरतिहि बखाने॥
ईस्वरांस अवतार महि मरजादा माँड़ी अघट। कलिजुग धर्मपालक प्रगट आचारज संकर सुभट॥ (भक्तमाल छप्पय ४२)

अर्थात् अधर्मप्रधान कलियुगमें वैदिक धर्मके रक्षक श्रीशंकराचार्यजीका अवतार हुआ। आप विधर्मियोंको शास्त्रार्थमें परास्त करनेवाले वाक्-वीर थे। वैदिक मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले उद्दण्ड, ईश्वरको न माननेवाले बौद्ध, शास्त्रविरुद्ध तर्क करनेवाले जैनी और पाखण्डी आदि जो लोग भगवान्‌से विमुख थे, उन्हें आपने दण्ड दिया। भय दिखाकर शास्त्रार्थमें हराकर उन्हें बलात् खींचकर सनातन धर्मके मार्गपर ले आये। आप सदाचारकी सीमा अर्थात् बड़े सदाचारी थे। सारा संसार आपकी कीर्तिका वर्णन करता है। आप भगवान् शंकरके अंशावतार थे। पृथ्वीपर प्रकट होकर आपने वेदशास्त्रकी सम्पूर्ण मर्यादाओंका इस प्रकार समर्थन और स्थापन किया कि उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रही। वह अचल हो गयी।

किया करती थी। कभी वह 'हा नाथ! हा नाथ!' कहकर क्रन्दन करती, कभी कीर्तन करते हुए नाचने

भक्त बालिका करमैती
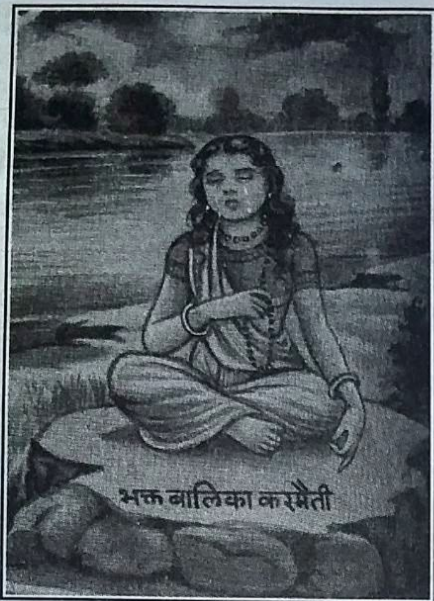
लगती और कभी हँसते-हँसते लोटपोट हो जाती। नन्ही-सी बच्चीके भगवत्प्रेमको देखकर घरके लोग प्रसन्न हुआ करते थे।

करमैतीकी इच्छा विवाह करनेकी नहीं थी; परंतु लज्जावश वह कुछ कह नहीं सकी। पिताने उसका विवाह कर दिया; लेकिन जब ससुरालवाले उसे लेने आये, तब वह व्याकुल हो उठी। जो शरीर श्यामसुन्दरका हो चुका, उसे दूसरेके अधिकारमें कैसे दिया जा सकता है! उसने अपने प्रभुसे प्रार्थना प्रारम्भ की और जो कातर होकर उन श्रीवृन्दावनचन्द्रको पुकारता है, उसे अवश्य मार्ग मिल जाता है। करमैतीको भी एक उपाय सूझ गया। आधी रातको जब कि सब लोग सो रहे थे, वह अकेली बालिका चुपचाप घरसे निकल पड़ी और वृन्दावनके लिये चल पड़ी।

सबेरे घरमें करमैतीके न मिलनेपर हलचल मच गयी। परशुराम पण्डित जानते थे कि उनकी पुत्री कितनी पवित्र है; किंतु लोकलाजके भयसे अपने यजमान राजाके पास गये। राजाने अपने पुरोहितकी सहायताके लिये चारों ओर घुड़सवार भेजे कि वे करमैतीको ढूँढ़ लावें। करमैती दौड़ी चली जा रही थी। रात्रिभरमें वह कितनी दूर निकल आयी, सो उसे पता ही नहीं। सबेरा होनेपर भी वह भागी ही जा रही थी कि उसने घोड़ोंकी टापका शब्द सुना। उसे डर लगा कि घुड़सवार उसे ही पकड़ने आ रहे हैं। आस-पास न कोई वृक्ष था और न कोई दूसरा छिपनेका स्थान; किंतु एक ऊँट मरा पड़ा था और रात्रिमें शृगालोंने उसके पेटका भाग खा लिया था। करमैतीकी दृष्टि ऊँटके पेटमें बनी कन्दरापर गयी। इस समय वह सांसारिक विषयोंकी भयंकर दुर्गन्धसे भाग रही थी। मरे ऊँटके शरीरसे निकलनेवाली गन्ध उसे विषयोंकी दुर्गन्धके सामने तुच्छ जान पड़ी। भागकर वह ऊँटके पेटमें छिप गयी। घुड़सवार पास आये तो दुर्गन्धके मारे उन्होंने उस ऊँटकी ओर देखातक नहीं। वहाँसे शीघ्रतापूर्वक वे आगे बढ़ गये और अन्तमें हताश होकर लौट गये। माता-पिता आदि भी पुत्रीके सम्बन्धमें निराश हो गये।

जिसकी कृपासे विष अमृत हो जाता है, अग्नि शीतल हो जाती है, उसीकी कृपावर्षा करमैतीपर हो रही थी। ऊँटके शरीरमें वह भूखी-प्यासी तीन दिन छिपी रही। उस सड़े ऊँटके शरीरकी गन्ध उसके लिये सुगन्धमें बदल गयी थी। चौथे दिन वह वहाँसे निकली। मार्ग उसका जाना हुआ नहीं था; किंतु जो सबका एकमात्र मार्गदर्शक है, उसकी ओर जानेवालेको मार्ग नहीं ढूँढ़ना पड़ता। मार्ग ही उसे ढूँढ़ लेता है। करमैतीको साथ मिल गया और वह वृन्दावन पहुँच गयी। वहाँ पहुँचकर मानो वह आनन्दके समुद्रमें मग्न हो गयी।

जब परशुराम पण्डितको अपनी पुत्रीका कहीं पता न लगा, तब वे वृन्दावन आये; लेकिन भला वृन्दावनमें करमैतीको जानता-पहचानता कौन था कि पता लगता। एक दिन वृक्षपर चढ़कर परशुराम पण्डित इधर-उधर देख रहे थे। ब्रह्मकुण्डपर उन्हें एक वैरागिनी दिखायी पड़ी। वहाँ जानेपर उन्होंने देखा कि साधुवेशमें करमैती ध्यानमग्न बैठी है। पुत्रीकी दीन-हीन बाहरी दशा देखकर पिताको शोक तो हुआ; परंतु उसके भगवत्प्रेमको देखकर वे अपनेको धन्य मानने लगे। कई घण्टे बैठे रहनेपर भी जब करमैतीका ध्यान भंग नहीं हुआ, तब पिताने उसे हिला-डुलाकर जगाया। वे उससे घर चलकर भजन करनेका आग्रह करने लगे। करमैतीने कहा—'पिताजी! यहाँ आकर भी कोई कभी लौटा है। मैं तो व्रजराजकुमारके प्रेममें डूबकर मर चुकी हूँ। अब मुर्दा यहाँसे उठे कैसे?'

अन्ततः परशुरामजी उसके भक्तिभावको देखकर

वापस घर लौट गये। राजाने जब यह समाचार सुना, तब वह भी करमैतीके दर्शन करने वृन्दावन आया। राजाके बहुत आग्रह करनेपर करमैतीबाईने एक छोटी कुटिया बनवाना स्वीकार कर लिया। राजाने करमैतीबाईके लिये ब्रह्मकुण्डके पास एक मठिया बना दी। करमैतीबाईकी भक्तिने राजाको भी भक्त बना दिया।

इसी प्रकार भक्तमालमें अनेकानेक भक्तोंके पावन चरित्रोंका रोचक वर्णन हुआ है।

श्रीनाभादासजी कहते हैं कि संसारमें जितने भक्त हैं, उन सबका वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसमें है? यह तो वैसे ही असम्भव है, जैसे कोई चिड़िया सब समुद्रोंका जल पी लेनेका विचार करे तो उसके उदरमें समुद्रका जल कैसे अट सकता है?—

भक्त जिते भूलोक में कथे कौन पै जायँ।
समुँद पान श्रद्धा करै कहँ चिरि पेट समायँ॥

(दोहा २०४)

नाभादासजी कहते हैं—जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखा-पत्ते—सब अंग-प्रत्यंग पुष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार इस भक्तमालमें वर्णित आचार्यों एवं भक्तोंके वर्णनसे दूसरे भक्तों, जिनका इसमें वर्णन नहीं है, की भक्ति एवं महिमाको भी समझकर सन्तोष करना चाहिये। भगवद्विग्रह (शालग्राम) या तुलसीदल छोटा हो अथवा बड़ा—सबकी महिमा एक-जैसी है, उसी प्रकार भगवद्भक्तजन छोटे हों या बड़े—सभी अनन्तगुणोंके कारण महान् महिमावाले हैं। भक्तमालमें यदि किसीका वर्णन पहले हो गया हो, किसीका बादमें तो यह अपराध क्षन्तव्य है—

श्रीमूरति सब बैष्नव लघु बड़ गुननि अगाध।
आगे पीछे बरनते जिनि मानौ अपराध॥

(दोहा २०५)

महाभागवत श्रीनाभादासजी भक्तचरितवर्णनके विषयमें अपना विनय प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि चारों युगोंमें जितने भी भक्त हुए हैं तथा जो आगे होंगे, उन सबके चरणकमलोंकी धूलि हमारे मस्तकपर सदा विराजमान रहे; क्योंकि वही मेरा सर्वस्व है। इस भक्तमालग्रन्थमें मैंने कुछ नया नहीं कहा है, पूर्वमें महर्षि वाल्मीकि, व्यासजी, श्रीशुकदेवजीप्रभृति जिन-जिन महानुभावोंने भक्तों तथा भगवच्चरित्रका वर्णन किया है, उन्हींका उच्छिष्ट पाकर मैंने अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार भक्तमालकी रचना की है। फसल कटनेके बाद खेतमें अनाजके जो दाने पड़े रह जाते हैं, जैसे उन्हें कोई बीनता हो, मेरा यह प्रयास भी वैसा ही है। इस भक्तमालकी रचनामें पूर्ववर्ती महानुभावोंका मैंने आश्रय लिया है, मेरा इसमें कुछ भी नहीं है।

ग्रन्थके उपसंहारमें श्रीनाभादासजी कहते हैं—किसीको योगका भरोसा है, किसीको यज्ञका, किसीको कुलका और किसीको अपने सत्कर्मोंका, किंतु मुझ नारायण (नाभादास)-की तो केवल यही अभिलाषा है कि गुरुदेवकी कृपासे भक्तोंकी यह माला मेरे हृदयदेशमें सदा विराजमान रहे—

काहू के बल जोग जग्य, कुल करनी की आस।
भक्त नाम माला अगर (उर) बसौ नारायनदास॥

(भक्तमाल दोहा २१४)

नाभादासजीकी यह दृढ़ धारणा है कि भक्तगुणगानके अतिरिक्त इस भवसागरसे उद्धारका अन्य कोई उपाय नहीं है—***'भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ।'***

इस प्रकार आद्योपान्त सम्पूर्ण भक्तमालग्रन्थ भक्तोंकी महिमा, उनके पवित्र नामोंके स्मरण तथा उनकी मंगलमयी लीलाकथाओंके प्रतिपादनमें पर्यवसित है। यह किसी सम्प्रदाय-परम्पराका प्रवर्तक ग्रन्थ नहीं है। इसमें सभी सम्प्रदायोंके भक्तोंकी महिमाका प्रतिपादन हुआ है। भक्त शब्द अत्यन्त व्यापक है, राम, कृष्ण, शिव, सूर्य, दुर्गा, गणेश—सभीके उपासक भक्त ही कहलाते हैं।

भक्तमालकी शैली पद्यात्मक होनेसे बड़ी ही सुन्दर तथा गेय है। भक्तों तथा सन्तोंके समाजमें इसका बड़ा ही आदर है और वैष्णवसमाजका तो यह कण्ठहार ही है। अनेक सन्तोंको यह सम्पूर्ण भक्तमाल कण्ठ है तथा यत्र-तत्र इसकी कथाओंका गायन होता रहता है। भगवान् भी अपने प्रेमी भक्तोंकी कथा सुनकर बहुत आनन्दित होते हैं। भक्तमालकी कथा करनेवाले सन्त-आचार्य अपनेको '**भक्तमाली**' कहनेमें

बड़े गौरवका अनुभव करते हैं, जिस प्रकार भागवत आदिका सत्संग होता है, वैसे ही भक्तमालकी कथाएँ भी बड़े समारोहपूर्वक गायी एवं सुनी जाती हैं। यह ग्रन्थ आबाल-वृद्ध, नर-नारी, विद्वानों तथा कम पढ़े-लिखे—सभीके लिये महान् उपयोगी है। जिस प्रकार कलियुगके जीवोंका निस्तार करनेके लिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने वाल्मीकीय रामायणको श्रीरामचरितमानसके रूपमें भाषामें रच दिया, उसी प्रकार श्रीनाभादासजीने भागवतपुराणको भक्तमालके रूपमें पद्योंके रूपमें प्रस्तुतकर सर्वसुलभ बना दिया, इतना ही नहीं, उसमें कलियुगके भक्तोंको जोड़कर उसे और भी महनीय बना दिया। यह श्रीनाभादासजीका जगत्पर महान् उपकार है। सभी सम्प्रदायाचार्यों एवं सभी सम्प्रदायके सन्तोंका समान-भावसे श्रद्धापूर्वक स्मरण—यह भक्तमालकी सबसे बड़ी विशेषता है।

श्रीनाभादासजीका पावनस्मरण

किसी भी ग्रन्थकी महिमा, मान्यता उसके रचयिताके व्यक्तित्वसे सम्बन्धित होनेके कारण होती है, श्रीनाभादासजीका जन्म-कर्म दिव्य था, इसी कारण भक्तमाल भी दिव्य ग्रन्थके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ। आपकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि आपने जन्म लेकर अपने नेत्र बन्द ही रखे। जगत्को देखा ही नहीं, सन्त गुरुदेवकी कृपा हो गयी, तब आपने नेत्र खोले। सर्वप्रथम गुरुगोविन्दके ही दर्शन किये। सन्तोंकी कृपासे दिव्य विलक्षण दृष्टि प्राप्त हुई और उन्हींकी कृपासे उनकी आज्ञाके पालनके लिये भक्तमालकी रचना की। श्रीनाभादासजीका दूसरा नाम था श्रीनारायणदास। श्रीनाभादासजी श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके महान् आचार्य रहे हैं। श्रीनाभादासजीने श्रीअग्रदासजीको[1] अपना गुरु और अपनेको उनका सहचर बताया है और उन्हींकी आज्ञासे उन्होंने भक्तमाल ग्रन्थकी रचना की। अग्रदासजीके गुरु थे पयहारी श्रीश्रीकृष्णदासजी[2] और कृष्णदासजी श्रीअनन्तानन्दजीके शिष्य थे, जो कि श्रीरामानन्दजीके साक्षात् शिष्योंमें प्रधान शिष्य थे।

इस प्रकार नाभादासजीकी गुरु-परम्परा इस प्रकार बनती है—
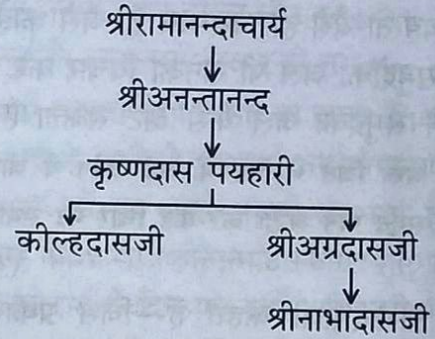
श्रीनाभादासजीने अपनी जीवनीके विषयमें भक्तमालमें कोई उल्लेख नहीं किया तथापि श्रीप्रियादासजीने भक्तमालकी टीका भक्तिरसबोधिनीके कवित्त-संख्या १२-१३ में श्रीनाभादासजीकी प्रारम्भिक अवस्थाका वर्णन किया है, तदनुसार उनका जन्म प्रसिद्ध हनुमान-वंशमें हुआ था, वे जन्मान्ध थे। दुर्भिक्ष (अकाल)-के समयमें उनके माता-पिता उन्हें जंगलमें छोड़ गये थे। दैवयोगसे उसी जंगलमें श्रीकील्हजी और श्रीअग्रजी आ निकले। उस पाँच

---

१. भक्तमालमें श्रीनाभादासजीने अपने गुरुदेव श्रीअग्रदासजीका स्मरण इस छप्पयमें इस प्रकार किया है—

सदाचार ज्यों संत प्रात जैसे करि आए। सेवा सुमिरन सावधान (चरन) राघव चित लाए॥
प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर। रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर॥
(श्री) कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत मन बच क्रम करि अटल दयो।
(श्री) अग्रदास हरि भजन बिन काल बृथा नहिं बित्तयो॥ (भक्तमाल छप्पय ४१)

अर्थात् श्रीस्वामी अग्रदासजीने भगवद्भजनके बिना क्षणमात्र समयको भी व्यर्थ नहीं बिताया। आपका वैष्णव सदाचार पूर्ववर्ती (प्राचीन) आचार्योंके समान ही था। आप सदा मानसी सेवा एवं प्रकट विग्रहसेवामें तथा भगवन्नामस्मरणमें सावधान रहते थे। सदा राघवेन्द्र सरकारके श्रीचरणोंमें मनको लगाये रहते थे। (सीताराम विहार) प्रसिद्ध बागमें आपकी बड़ी प्रीति थी, उसे सींचने, बुहारने आदिकी सब सेवाएँ सदा अपने हाथसे ही करते थे। आपकी जिह्वासे परम पवित्र श्रीसीताराम नामकी ध्वनि इस प्रकार होती रहती थी, मानो मधुर गर्जनके साथ मन्द-मन्द वर्षा हो रही है। गुरुदेव पयहारी श्रीकृष्णदासजीने परमकृपा करके मन-वचन-कर्मसे सम्बन्धित अचल भक्तिका भाव आपको प्रदान किया था।

२. भक्तमालमें श्रीपयहारीजीका वर्णन इस रूपमें किया गया है—

जाके सिर कर धर्‍यो तासु कर तर नहिं अड्ड्यो। आप्यो पद निर्बान सोक निर्भय करि अड्ड्यो॥

वर्षके अन्धे अनाथ बालकको एकान्त जंगलमें भटकता देखकर श्रीकील्हजीको दया आ गयी। उन्होंने अपने कमण्डलुसे थोड़ा-सा जल लेकर बालककी आँखोंपर छींटा दिया तो उनमें ज्योति आ गयी और बालकको दिखायी पड़ने लगा और कृतज्ञतावश उनकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे। नाभाजी दोनों महात्माओंके पैरोंमें गिर पड़े। बालककी प्रतिभा तथा विनयसे वे दोनों महानुभाव बड़े प्रभावित हुए और उसे गलता (जयपुर) ले आये। कील्हजीकी अनुमतिसे श्रीअग्रदासजीने उन्हें मन्त्रोपदेश दिया। जब यह बालक कुछ बड़ा हुआ तो इसे स्थानकी सेवा-टहल करनेमें लगा दिया गया। श्रीनाभाजीकी प्रारम्भसे ही सन्त-सेवा और सन्तोंसे प्राप्त प्रसादके ग्रहण करनेमें विशेष रुचि थी। उसीके प्रभावसे उनकी बुद्धि दिव्य हो गयी, उन्हें भक्तिका आस्वाद मिल गया और उनका अन्तःकरण प्रभुप्रेमके रंगमें सराबोर हो गया। फिर उन्होंने गुरुदेवकी आज्ञासे भक्तिरससे आप्लावित भक्तमालकी रचना की।

नाभाजीके सम्बन्धमें कई दन्तकथाएँ भी प्रचलित हैं। एक किंवदन्तीके अनुसार नाभाजीको ब्रह्माजीका अवतार बताया गया है और कहा गया है कि एक बार ब्रह्माजीने व्रजके सब ग्वालबालों तथा गौओं और बछड़ोंका हरण कर लिया था। इसपर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी योगमायाके प्रभावसे वैसे ही अन्य ग्वाल-बालों, गौओं तथा बछड़ोंकी सृष्टि कर दी, व्रजके लोगोंको इस बातका पता ही नहीं लगा। बादमें ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णसे अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी तो भगवान्ने उन्हें इतना ही दण्ड दिया कि तुम कलियुगमें नेत्रहीन होकर जन्म ग्रहण करोगे, किंतु तुम्हारा यह अन्धापन केवल पाँच वर्षतक ही रहेगा। बादमें महात्माओंकी कृपासे तुम्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी। इस किंवदन्तीके अनुसार ब्रह्माजी ही नाभादासजीके रूपमें अन्धे बालकके रूपमें उत्पन्न हुए और बादमें श्रीकील्हजी तथा श्रीअग्रदासकी कृपासे उन्हें दृष्टि प्राप्त हुई।

नाभादासजीके माता-पिता, कुल, ग्राम आदिका कोई प्रामाणिक वर्णन प्राप्त नहीं होता है। उनके दीक्षागुरु स्वामी श्रीअग्रदासजी थे और प्रायः सभी ऐसा मानते हैं कि श्रीनाभादासजीका सम्बन्ध जयपुर गलता गद्दीसे था और इनका समय विक्रम संवत् सत्रहवींके आसपासका है।

भक्तमालकी टीका

नाभादासजीके भक्तमालसे पूर्व भी भक्तमहिमा-सम्बन्धी कथाओंका प्रचार अत्यन्त प्राचीनकालसे संस्कृत तथा अन्य भाषाओंमें होता आया है तथा भक्तमालके बाद भी अनेक भक्तमाल रचे गये, किंतु नाभादासजीके भक्तमालकी जैसी प्रतिष्ठा हुई, वैसा स्थान किसी ग्रन्थको प्राप्त न हो सका। इसी कारण भक्तमालकी रचनाके बाद इसपर अनेक टीकाएँ तथा टिप्पणियाँ लिखी जाने लगीं। गद्यात्मक अथवा छन्दोबद्ध शैलीमें बहुत-सी टीकाएँ लिखी गयीं, किंतु उनमेंसे सं० १७६९ में लिखी गयी श्रीप्रियादासजीकी टीकाका सर्वाधिक प्रचार हुआ, श्रीप्रियादासजीने अपनी टीकाका नाम रखा—'**भक्तिरसबोधिनी**।' वास्तवमें यह एक ऐसी टीका है, जो भक्तमालके मूल भावों तथा कथाओंको विस्तारसे विवेचित करके अति सरस रूपमें भक्तकथा—चरित्रको प्रस्तुत करती है। श्रीनाभादासजीने अपने छप्पयोंमें किसी छप्पयमें एक भक्तका तथा किसी छप्पयमें बीसों भक्तोंका

तेजपुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता। सेवत चरन सरोज राय राना भुवि जेता॥
दाहिमा बंस दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियो। निर्बेद अवधि कलि कृष्नदास अन परिहरि पय पान कियो॥

(भक्तमाल छप्पय ३८)

अर्थात् इस कराल कलिकालमें पयहारी श्रीकृष्णदासजी वैराग्यकी सीमा हुए। आपने अन्नका त्यागकर केवल दुग्धपान करके भजन किया। इसीलिये आप 'पयहारी' इस नामसे विशेष प्रसिद्ध हुए। आपने जिसके सिरपर अपना हाथ रखा अर्थात् शिष्य करके जिसे अपनाया, उसके हाथके नीचे अपना हाथ कभी नहीं फैलाया अर्थात् उससे याचना नहीं की, वरन् उसे भगवत्पद—मोक्षका अधिकारी बना दिया और सांसारिक शोक-मोहसे सदाके लिये छुड़ाकर अभय कर दिया। श्रीपयहारीजी भक्तिमय तेजके समूह थे और आपमें अपार भजनका बल था। बालब्रह्मचारी एवं योगी होनेके कारण आप ऊर्ध्वरेता हो गये थे। भारतवर्षके छोटे-बड़े जितने राजा-महाराजा थे, वे सभी आपके चरणोंकी सेवा करते थे। दधीचिवंशी ब्राह्मणोंके वंशमें उदय (उत्पन्न) होकर आपने भक्तिके प्रतापसे भक्तोंके हृदयकमलोंको सुख दिया।

नाम-स्मरण करके उनकी कथाका संकेतमात्र कर दिया है, किंतु श्रीप्रियादासजीने उन भक्तोंका चरित्र विस्तारसे बड़ी ही सरस भाषामें प्रस्तुत किया है, उदाहरण के लिये गुजरातमें नरसी मेहता नामक महान् भक्त हुए हैं, जिनका वर्णन श्रीनाभाजीने केवल एक छप्पय (सं० १०८)-में किया है, किंतु इसी छप्पयकी पूरी कथा श्रीप्रियादासजीने २६ कवित्तोंमें बड़े रोचक ढंगसे प्रस्तुत की है।

भक्तमालके दोहे तथा छप्पयोंकी कुल संख्या २१४ है, जिसकी टीकामें प्रियादासजीने ६३४ कवित्त रचे हैं। बिना प्रियादासजीकी टीकाके भक्तमालका अर्थ लगाना तथा कथाका स्वारस्य प्राप्त होना बड़ा कठिन है। जैसे वेदमन्त्रोंके निगूढ़ अर्थोंको भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने खोला है, वैसे ही भक्तमालकी कथाओंको बिना प्रियादासजीकी टीकाके समझना बड़ा ही दुरूह है। इससे श्रीनाभादासजीके हार्दिक अभिप्रायोंको समझनेमें बड़ी सहायता मिलती है, यही कारण है कि सन्त-समाजमें इसका मूल भक्तमालके समान ही आदर-मान है। भक्तमालकी संरचना छप्पय छन्दोंमें हुई है तो प्रियादासने उसकी टीका कवित्त छन्दोंमें की है।

इसका रहस्य बताते हुए श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि एक बार मैं महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यजी एवं अपने गुरुदेव श्रीमनोहरदासजीके श्रीचरणोंका अपने हृदयमें ध्यान कर रहा था तथा मुखसे नामसंकीर्तन कर रहा था, उसी समय श्रीनाभादासजीने मुझे आज्ञा दी कि श्रीभक्तमालकी विस्तारपूर्वक टीका करके मुझे सुनाइये, वह टीका कवित्त नामक छन्दोंमें हो; क्योंकि यह छन्द अत्यन्त प्रिय लगता है, जिससे यह भक्तमालकी टीका सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध हो जाय। इतना कहकर नाभाजीने अपनी वाणीको विराम दिया, तब मैंने उनसे कहा—प्रभो! मैं अपनी बुद्धिकी सीमाको भलीभाँति जानता हूँ तथापि मुझे विश्वास है कि मेरे हृदयमें प्रविष्ट होकर कृपा करके आप इसे पूरा करा देंगे। उपर्युक्त घटनाका वर्णन प्रियादासजीने अपनी टीकामें किया है।*

श्रीप्रियादासजीका विशेष वर्णन प्राप्त नहीं हो पाता। बताया जाता है कि इनका जन्म राजपुरा नामक ग्राम-सूरत (गुजरात)-में हुआ। ये नवीन अवस्थामें वृन्दावन आ गये और श्रीराधारमणजीके मन्दिरमें श्रीमनोहरदासजीके शिष्य हुए। गुरुदेवकी आज्ञासे तीर्थाटन किया। प्रयाग, अयोध्या, चित्रकूट आदि धामोंमें भगवद्दर्शनकर गलता गद्दी जयपुर पधारे और कुछ दिन वहाँ रहे। यहींपर मानसीसेवाके समय श्रीनाभादासजीने दर्शन देकर भक्तमालकी छन्दोबद्ध टीका लिखनेकी आज्ञा दी। उनकी टीका भक्तिरसबोधिनीके तीन कवित्तों (६३०-६३१, ६३३)-के आधारपर पता चलता है कि वे चैतन्यसम्प्रदायके अनुयायी थे और उनके गुरु महाराजका नाम था श्रीमनोहरदासजी। उन्होंने सं० १७६९ फाल्गुन कृष्णपक्ष सप्तमीको श्रीवृन्दावनधाममें भक्तमालकी टीका पूर्ण की।

श्रीप्रियादासजी प्रारम्भके सात कवित्तोंमें भक्तिका स्वरूप, सत्संगकी महिमा, नाभाजीका गुणानुवाद तथा भक्तमालकी महिमा और अपनी टीकाकी विशेषता बतानेके अनन्तर आठवें कवित्तमें यह सिद्धान्त निश्चित करते हैं कि भगवत्कृपाको प्राप्त करनेके लिये जिन गुणोंकी आवश्यकता है; वे गुण, वह योग्यता भक्तोंके चरित्रको सुननेसे ही आती है; क्योंकि अन्य साधनोंमें साधनाका अभिमान आनेकी सम्भावना रहती है, परंतु भक्त-चरित्र-श्रवणसे विनय, दैन्य एवं शरणागत होनेका भाव पैदा होता है, इसलिये भक्तिका सच्चा अधिकारी बननेके लिये भक्तोंके चरित्रोंका श्रवण करना आवश्यक है। जो उपासक भक्तोंके चरित्रोंकी अवहेलना करके अन्य साधनोंका आश्रय लेता है, वह भक्तिके सूक्ष्म स्वरूपको नहीं जान सकता, बिना भक्तमालके (श्रवण किये) भक्तिका स्वरूप बहुत ही दूर रहता है—

'ऐ पै बिना भक्तमाल भक्तिरूप अति दूर है॥' (कवित्त ८)

---

* **महाप्रभु कृष्णचैतन्य मनहरनजू के चरण कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइये।**
ताही समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥
कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै जगै जग माहिं कहि वाणी विरमाइये।
जानों निजमति ऐ पै सुन्यौ भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियो ऐसेई कहाइये॥

(भक्तिरसबोधिनी टीका कवित्त-संख्या १)

‘बिना भक्तमाल भक्तिरूप अति दूर है’

(मलूकपीठाधीश्वर सन्तप्रवर श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक श्रीभगवान्‌की अहैतुकी कृपासे जीवको मनुष्य-शरीर प्राप्त होता है। मानव-जीवनका चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति ही है। भगवत्प्राप्ति भक्तोंका संग किये बिना सम्भव नहीं है, ऐसा सभी सद्ग्रन्थ कहते हैं। भक्तसंग प्राप्त करनेका एक सहज सुगम साधन है, श्रीनाभागोस्वामीरचित श्रीभक्तमाल ग्रन्थ। इसका अध्ययन, श्रवण तथा इसमें वर्णित चरित्रोंका मनन एवं अनुशीलन करनेसे भक्तोंके संगका लाभ सहज ही प्राप्त हो जाता है।

इस ग्रन्थमें वर्णित भक्त-गाथाओंमें नवधा, प्रेमलक्षणा आदि भक्तिके विविध स्वरूपोंका ज्ञान, वैराग्य, तप, त्याग, शील-सदाचार, सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया, समानता और दैन्य आदि सद्गुणोंका, भक्तोंकी रहनी-सहनी, कहनी, भगवान्‌के प्रति उनके दास्य, सख्य आदि दिव्य भाव तथा श्रीभगवान्‌की भक्तवत्सलता, भक्तप्रियता, कृपालुता, सौलभ्य, सौशील्य आदि कल्याणगुणोंका मनोरम वर्णन हुआ है। महापुरुषोंके जीवनका अध्ययन करनेसे मनुष्यको अपनी भूलोंका बोध होता है एवं भवाटवीसे निकलकर वास्तविक सुखको प्राप्त करनेकी प्रेरणा मिलती है। उनके चरित्रोंको हृदयङ्गम करनेसे मनुष्यकी विषय-वासना, दुष्कर्म-प्रवृत्ति, अन्यायसे अर्थोपार्जनकी वृत्ति आदि समस्त दोष जड़-मूलसे नष्ट हो जाते हैं। वे सभी लाभ भक्तमाल ग्रन्थके अध्ययनसे प्राप्त होते हैं तथापि इस ग्रन्थकी विशिष्ट देन है—अहंकारका नाश अर्थात् दैन्यकी उपलब्धि। इसमें वर्णित गाथाओंका प्रेमपूर्वक पठन-श्रवण करनेसे क्रमशः अभिमान नष्ट होता है और भक्तोंके हृदयका उत्कृष्ट दैन्य पाठकके हृदयमें संचरित होने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप उसका भक्तिराज्यमें प्रवेश हो जाता है, यही भक्तमाल ग्रन्थका सर्वोपरि लाभ है।

वेद-पुराणादि ग्रन्थोंमें भक्त-चरित्रका प्रचुर वर्णन प्राप्त होता है। प्रेमी, साधु, सन्त, महात्मा, भागवत, वैष्णव, सज्जन, योगी, ज्ञानी, मुक्त, सिद्ध, अतीत, मुमुक्षु आदि नामोंसे सर्वत्र भक्तका ही वर्णन किया गया है। इन पृथक्-पृथक् नामोंसे जो लक्षण हमारे आर्ष ग्रन्थोंमें वर्णित हैं, वे भक्तके ही लक्षण हैं। ये लक्षण जिस महापुरुषके जीवनमें प्रत्यक्ष हों, वह भक्तरूपसे मान्य है। वैदिक वाङ्मयमें विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य, शौनक आदि ऋषियोंके जो वर्णन प्राप्त हैं, वे भक्तचरित्र ही हैं। इसलिये भक्तमाल ग्रन्थके पूर्वार्धमें इन वैदिक-पौराणिक ऋषियोंका स्मरण किया गया है। भक्तमालकी रचनासे पूर्व सभी साधक वेदादि ग्रन्थोंसे भक्तचरित्रको हृदयङ्गम करते थे। प्राचीनकालमें मनुष्योंकी मेधाशक्ति, संस्कार, जीवन-शैली, वातावरण आदि परिष्कृत और पवित्र होते थे। अतः वे इन आर्ष संस्कृत ग्रन्थोंसे भक्तचरित्रका परिशीलनकर परमार्थ-साधनामें उन्नति कर लेते थे। जैसे-जैसे कलिका प्रभाव बढ़ता गया, हमारे संस्कार, वातावरण आदि दूषित होते गये। ऐसी स्थितिमें अपौरुषेय वेदोंसे अथवा ऋषिप्रणीत संस्कृत ग्रन्थोंसे भक्त-चरित्रको ग्रहण कर पाना क्रमशः कठिन होता गया। करुणावरुणालय श्रीभगवान्‌ने ऐसे ही समयमें नाभाजीको धराधामपर भेजा। श्रीसीतारामजीकी निज सखियाँ ही उनकी आज्ञासे विश्वकल्याणके लिये श्रीअग्रदेवाचार्यजी एवं उनके शिष्य नाभादासजीके रूपमें धरतीपर प्रकट हुईं, ऐसा माना गया है—

अग्रदास नाभादि सखी ये, सबै राम सीता की।

(श्रीभगवत् रसिककृत भक्तनामावली)

वेद-पुराणादिक ग्रन्थोंमें वर्णित भक्त-चरित्र इस प्रकार है, जैसे दुग्धमें घृत। जब उस घृतको विधि-विशेषसे पृथक् निकाल लिया जाता है तो वह सर्वजन-ग्राह्य हो जाता है। इसी प्रकार गोस्वामी श्रीनाभादासजीने प्राचीन आर्ष ग्रन्थोंसे भक्त-चरित्ररूपी घृतको पृथक्‌कर उसका प्राकृत भाषामें वर्णन किया, जिससे वह सबके लिये सुलभ हो गया। श्रीनाभाजीकी प्रशंसामें कहा गया है—

बार बार पद बन्दौं (श्री) नाभा आभा ऐंन।
(जिन) काढ्यौ गाभा वेद को भक्तमाल रस दैंन॥

नाभाजीने वेदोंसे उसका गाभा (सारभाग) निकालकर सर्वजनहिताय भक्तमाल ग्रन्थकी रचना की।

भक्तमालके प्रारम्भमें ग्रन्थ-रचनाका उद्देश्य एवं विषय-वस्तु आदिका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

संतन निरनै कियो मथि श्रुति पुरान इतिहास।
भजिबे को दोई सुघर कै हरि कै हरिदास॥
(श्रीगुरु) अग्रदेव आग्या दई भक्तन को जस गाउ।
भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ॥

(भक्तमाल ३-४)

वेद, पुराण, इतिहासादि ग्रन्थोंका अवलोकनकर सन्तोंने एक स्वरमें यह निर्णय दिया कि मुमुक्षु जीवको श्रीभगवान् एवं उनके भक्तोंका ही भजन करना चाहिये। भगवान्‌के अनन्त गुण, लीला एवं महिमाका यथासम्भव वर्णन वाल्मीकि, व्यासादि ऋषियोंने किया ही है। अब उनके भक्तोंके मंगलमय चरित्रोंका पुष्कल वर्णन किया जाय, यह विचारकर श्रीअग्रदेवाचार्यजीने अपने शिष्य श्रीनारायणदासजी (नाभाजी)-को भक्तोंका यशोगान करनेकी आज्ञा प्रदान की; क्योंकि भक्तोंका आश्रय लिये बिना इस भवसागरसे पार जानेका और कोई उपाय नहीं है।

गुरुदेवकी आज्ञा श्रवणकर नाभाजीने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की—

बोल्यो कर जोरि 'याको पावत न ओर छोर,
गाऊँ रामकृष्ण नहीं पाऊँ भक्ति दाव को'।
कही समुझाइ, 'वोई हृदय आइ कहैं सब,
जिन लै दिखाय दई सागर में नाव को॥'

(भक्तिरसबोधिनी ११)

'गुरुदेव! मैं भक्तोंका चरित्र कैसे वर्णन कर सकूँगा? श्रीरामकृष्णादि अवतारोंकी लीलाका गान करना कदाचित् सुगम है, किंतु सन्तोंके अपार भाव रहस्योंको समझना कठिन है।' तब श्रीअग्रदेवाचार्यजीने उन्हें आशीर्वाद दिया कि जिस भक्तका तुम स्मरण करोगे, वे स्वयं तुम्हारे हृदयमें आकर अपने स्वरूपको कह देंगे। श्रीगुरुदेवसे यह अमोघ आशीर्वाद प्राप्तकर श्रीनाभाजी भक्तमालके प्रणयन में प्रवृत्त हुए। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत महर्षि वेदव्यासकी समाधि भाषा है, उसी प्रकार भक्तमालको नाभाजीकी समाधि वाणी माना जाता है। इसीलिये सभी धर्म-सम्प्रदायोंके अनुयायी विद्वानोंने यह स्वीकार किया है कि इस ग्रन्थमें किया गया भक्तगाथाओंका वर्णन सर्वथा यथार्थ है, इसमें किसी प्रकारके पूर्वाग्रह अथवा पक्षपातका कोई स्थान नहीं है। श्रीनाभाजीके समयके ही रसिक सन्त श्रीध्रुवदासजीने कहा है—

भक्त नरायन भक्त सब, धरैं हियैं दृढ़ प्रीति।
बरनी आछी भाँति सौं, जैसी जाकी रीति॥

(भक्तनामावली)

भक्तमालके मूर्धन्य टीकाकार श्रीप्रियादासजीके शब्दोंमें—

जाको जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो,
कियो यों कवित्त पट मिहिं मध्य लाल है।

(भक्तिरसबोधिनी ७)

भक्तमालका मूलभूत सिद्धान्त भक्तपरत्व है। यद्यपि भक्त और भगवान्‌में कोई भेद नहीं है तथापि भगवान् सदा भक्तके अधीन ही रहते हैं। अतएव श्रीनाभाजीने भक्तपरत्वके सिद्धान्तको हृदयमें रखकर ग्रन्थका प्रणयन किया। भक्तमालका यह प्रथम मंगलाचरण दोहा उसका बीज माना जाता है—

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इन के पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥

(भक्तमाल १)

भक्त, भक्ति, भगवान् और गुरु—ये चारों भक्तमालकारकी दृष्टिमें एक ही तत्त्व हैं तथापि इनमें प्रधानता भक्तकी है। इसीलिये दोहेमें प्रथम उसीका स्मरण है। भक्तपरत्वका यह सिद्धान्त अध्यात्म-जगत्‌का एक रहस्य है। यद्यपि यह वेदादिक ग्रन्थोंमें अनेकशः वर्णित है, किंतु इसे सुगमतापूर्वक हृदयङ्गम करनेके लिये भक्तमालका अध्ययन अपेक्षित है।

राष्ट्रका उज्ज्वल भविष्य मनुष्योंके चरित्रपर ही निर्भर करता है। केवल भौतिक उपलब्धियोंका विकास किसी राष्ट्रको सुखी नहीं बना सकता। जबतक उसके

नागरिकोंका चरित्र श्रेष्ठ न हो। इस दृष्टिसे भक्तमाल ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। इसके पठन-श्रवणसे अनायास चरित्र-निर्माणकी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। ग्रन्थमें वर्णित भक्त-गाथाओंका यह अद्भुत प्रभाव है कि भावपूर्वक उनका अनुशीलन करनेवाला निश्चित ही उज्ज्वल चरित्रसे सम्पन्न हो जाता है। स्वार्थकी भावना मानव-चरित्रको दूषित करती है। स्वार्थी व्यक्ति समाज तथा राष्ट्रके लिये उपयोगी नहीं होता। इस ग्रन्थके पठन-श्रवणसे क्रमशः स्वार्थकी भावना कम होती है और उसके स्थानपर परोपकारकी भावनाका विकास होता है।

भक्तमालमें बिना किसी भेदभावके भक्त-चरित्रका वर्णन किया गया है। भारतवर्षके विभिन्न क्षेत्र, भाषा, जाति, सम्प्रदाय एवं वर्ग आदिके सन्तोंका चरित्र इसमें वर्णित है। अतः इसके पठन-श्रवणसे उक्त आधारोंपर होनेवाली अविवेकमूलक विषमताएँ दूर होती हैं। भक्तमाल ग्रन्थसे पारस्परिक एकता एवं समरसताकी प्रेरणा प्राप्त होती है। इसकी गाथाओंमें कई स्थलोंपर हमारी प्राचीन संस्कृतिकी छटाके दर्शन होते हैं। अतः इसे एक संस्कृतिकोष भी कहा जा सकता है। इन सभी दृष्टियोंसे यह एक अनूठा ग्रन्थ है, इसलिये इसका अधिक-से-अधिक प्रचार हो, इसकी नितान्त आवश्यकता है।

भक्तमालमें कुछ गाथा-चरित्र अतिभक्तिके माने जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि किसी-किसी भक्तके चरित्रका कोई अंश सबके लिये अनुकरणीय नहीं है। ऐसे प्रसंग भक्त और भगवान्-सम्बन्धी परानिष्ठाके प्रभावसे तत्तत् परिस्थितिके अनुसार घटित हुए हैं, इसलिये उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये। अतिभक्तिवाले सन्तोंके जो आचरण उनके उपदेशोंके अनुरूप हों, उन्हींको दृढ़तासे जीवनमें उतारना चाहिये। ग्रन्थमें ऐसे कुछ ही प्रसंग हैं, शेष सम्पूर्ण भक्तगाथाएँ सर्वदा सबके लिये भावपूर्वक अनुकरणीय हैं।

भक्तमाल एक इतिहास-ग्रन्थ भी है। इसमें संवत् आदिके द्वारा कालनिर्णयकी शैलीको नहीं अपनाया गया है तथापि इसकी भक्त-गाथाओंमें इतिहासके अनेक बिखरे सूत्र प्राप्त होते हैं। भक्तमालका रचनाकाल वि०सं० १६५० से १६८० के मध्य माना जाता है। श्रीनाभागोस्वामीने जिनका गुरुप्रदत्त नाम श्रीनारायणदास था, इसकी रचना जयपुरके गलतापीठ नामक स्थानमें की। यह स्थान श्रीरामानन्द-सम्प्रदायका अति प्राचीन पीठ है, जहाँ श्रीनाभाजीकी तिवारी अभी भी प्रसिद्ध है। ग्रन्थका भक्तमाल नाम स्वयं ग्रन्थकारद्वारा रखा गया प्रतीत होता है। नाभाजीने इस रचनाको भक्तदाम कहा है, जो भक्तमालका ही पर्याय है। यह माला भक्तवत्सल श्रीठाकुरजीको अत्यन्त प्रिय है। इसे उन्होंने अपने कण्ठहारके रूपमें धारण किया है। भक्तमालके प्रधान श्रोता भी श्रीठाकुरजी माने गये हैं। कथावाचनके प्रारम्भमें इस दोहेद्वारा उनका स्मरण किया जाता है—

हरि जू आय विराजिये कथा सुनहु इतिहास।
तुम श्रोता या माल के तव पद रज हम दास॥

ग्रन्थ-रचनाके लगभग सौ वर्ष पश्चात् वि०सं० १७६९ में सन्त श्रीप्रियादासजीने इसपर 'भक्तिरसबोधिनी' नामक टीका लिखी। टीका-लेखनकी आज्ञा उन्हें ध्यानावस्थामें स्वयं श्रीनाभादासजीसे प्राप्त हुई, इसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है—

ताही समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई
धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥

(भक्तिरसबोधिनी १)

इस टीकाका इतना आदर हुआ कि इसे भक्तमालका अंग ही माना गया। मूल और टीका मिलाकर भक्तमालका समग्र विग्रह है, ऐसी मान्यता है। नाभाजीने ग्रन्थमें भक्तोंके दिव्य भाव और उनकी भजन-पद्धति उजागर करनेको प्रधानता दी है। श्रीप्रियादासजीने भी इसी शैलीको अपनाते हुए मूल छप्पयोंमें कहे गये संक्षिप्त घटना-चरित्रोंका कवित्त छन्दमें विस्तारसे वर्णन किया। चरित्र-गाथाओंका विस्तृत वर्णन करनेसे भक्तिरसबोधिनी टीका इतिहास-पक्षके अपेक्षाकृत अधिक निकट है। यही कारण है कि टीकामें वर्णित किन्हीं घटना-तथ्योंके सन्दर्भमें कुछ इतिहासकारोंद्वारा कभी-कभी वैमत्य प्रकट किया जाता है, परंतु उसका अधिक मूल्य इसलिये नहीं है; क्योंकि किसी एक तथ्यके प्रति इतिहासकारोंके भी तो भिन्न-भिन्न मत होते ही हैं। इस

दृष्टिसे उस सन्दर्भमें १८वीं शताब्दीके प्रियादासजीके वर्णनको भी एक मतके रूपमें लिया जाना चाहिये। वस्तुतः भक्तमाल और उसकी भक्तिरसबोधिनी टीका दोनों अभिन्न ही हैं। मूल और टीकाकी ऐसी विलक्षण एकात्मताके अन्य उदाहरण साहित्य-जगत्में विरल ही प्राप्त होते हैं।

श्रीनाभागोस्वामी-रचित इस ग्रन्थ-रत्नका प्राचीनकालसे ही किसी सन्त भक्तद्वारा अध्ययन करनेकी परम्परा है। जैसे आर्ष ग्रन्थोंको गुरुमुखसे पढ़कर ही उनका विषय हृदयङ्गम होता है, उसी प्रकार भक्तमालको भी सन्तमुखसे पढ़कर अधिगम करनेकी प्रथा है। ग्रन्थमें वर्णित गाथाओंका स्वरूप तथा उनसे निष्पन्न सिद्धान्तको अविकल बनाये रखनेमें इस अध्ययन-परम्पराका महत्त्वपूर्ण योगदान है। भक्तमालमें उल्लिखित सन्त-निष्ठाको आत्मसात्कर उसे अन्य जिज्ञासुओंको पढ़ानेवाले तथा ग्रन्थको यथारीति पढ़कर उसका कथावाचन करनेवाले 'भक्तमाली' कहलाते हैं। प्राचीनकालसे ही वृन्दावन तथा अयोध्यामें भक्तमालियोंकी परम्परा रही है। पूज्य श्रीमाधवदासजी, पूज्य श्रीजगन्नाथप्रसादजी, पूज्य श्रीगिरिधारीदासजी, सद्गुरुदेव श्रीगणेशदासजी, श्रीमथुरादासजी तथा सुविख्यात प्रवक्ता श्रीनारायणदासजी 'मामाजी' आदि अनेक भक्तमाली श्रीवृन्दावनमें हुए हैं, जिनके प्रयाससे इस अनुपम ग्रन्थकी अध्ययन-अध्यापन-परम्परा आजतक अक्षुण्ण बनी हुई है। इनमें श्रीजगन्नाथप्रसादजी भक्तमाली वर्तमान युगमें इस ग्रन्थके मुख्य प्राध्यापक मनीषी हुए हैं। आपहीकी आज्ञासे पूज्य श्रीगणेशदासजी महाराज एवं श्रीरामेश्वरदासजी 'रामायणी'—इन दोनोंने ग्रन्थकी बृहद् व्याख्या लिखी, जो सुदामाकुटी आश्रम, वृन्दावनसे प्रकाशित है। ये सब प्रयास होनेपर भी जन-जनमें भक्तमालका व्यापक प्रचार हो, इसकी आवश्यकता बनी हुई है। सत्य सनातन धर्मके सुदृढ़ स्तम्भके रूपमें प्रतिष्ठापित गीताप्रेस, गोरखपुरने सन् २०१३ में कल्याणके वार्षिकांकके रूपमें भक्तमाल विशेषांक प्रकाशितकर इस दिशामें महत्त्वपूर्ण कार्य किया। परम प्रसन्नताका विषय है कि अब गीताप्रेसद्वारा व्याख्यासहित भक्तमाल ग्रन्थका प्रकाशन किया जा रहा है। इस प्रकाशनसे प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी सन्त-भक्तमालियोंकी ग्रन्थके व्यापक प्रचारकी अभिलाषा निश्चित पूर्ण होगी। श्रीभक्तवत्सल प्रभुके चरणोंमें यही प्रार्थना है कि इस कार्यमें सहयोगी रहे सभी सज्जनोंको वे अपनी पराभक्ति प्रदान करें। सद्गुरुदेव श्रीगणेशदासजी महाराजद्वारा रचित इन पंक्तियोंका स्मरण करके लेखनीको विराम देते हैं—

इस धन्य नाभा भारती की आरती आरति हरै।
यह भक्त भगवत् की कथा सब विश्व का मंगल करै॥

सभी सन्त-भक्तोंके चरणोंमें सादर नमन करते हुए ये शब्द-पुष्प प्रभु-चरणोंमें समर्पित हैं।

भगवद्भक्तोंद्वारा की गयी प्रार्थना

मन्त्रद्रष्टा ऋषिकी प्रार्थना

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् सन्दधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद् वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

'हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! मेरी वाणी मनमें स्थित हो जाय और मन वाणीमें स्थित हो जाय अर्थात् मेरे मन-वाणी दोनों एक हो जायँ। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप मेरे लिये प्रकट हो जाइये। हे मन और वाणी! तुम दोनों मेरे लिये वेदविषयक ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाले बनो। मेरा गुरुमुखसे सुना हुआ और अनुभवमें आया हुआ ज्ञान मेरा त्याग न करे—मैं उसे कभी न भूलूँ। मेरी इच्छा है कि अपने अध्ययनद्वारा मैं दिन और रात एक कर दूँ। अर्थात् रात-दिन निरन्तर ब्रह्म-विद्याका पठन और चिन्तन ही करता रहूँ। मैं वाणीसे श्रेष्ठ शब्दोंका उच्चारण करूँगा, सर्वथा सत्य बोलूँगा। वे परब्रह्म परमात्मा मेरी रक्षा करें। वे मुझे ब्रह्मविद्या सिखानेवाले आचार्यकी रक्षा करें। वे मेरी रक्षा करें और मेरे आचार्यकी रक्षा करें, आचार्यकी रक्षा करें। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों तापोंकी शान्ति हो।'

ध्रुवकी प्रार्थना

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥

'हे अनन्त परमात्मन्! मुझे आप उन विशुद्ध-हृदय महात्मा भक्तोंका संग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है; उनके संगमें मैं आपके गुणों तथा लीलाओंकी कथा-सुधाका पान करके उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही विविध भाँतिके दुःखोंसे पूर्ण भयंकर संसार-सागरके उस पार पहुँच जाऊँगा।' (श्रीमद्भा० ४।९।११)

परमात्मप्रभुसे प्रार्थना

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानां
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम्॥
वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥

'हे जगत्के कारण सत्स्वरूप परमात्मा! आपको नमस्कार है। हे सर्वलोकोंके आश्रय चित्स्वरूप! आपको नमस्कार है। हे मुक्ति प्रदान करनेवाले अद्वैततत्त्व! आपको नमस्कार है। शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म! आपको नमस्कार है। आप ही एक शरणमें जानेयोग्य अर्थात् आश्रय-स्थान हैं, आप ही एक पूजा करनेयोग्य हैं। आप ही एक जगत्के पालक और अपने प्रकाशसे प्रकाशित हैं। आप ही एक जगत्के कर्ता, पालक और संहारक हैं। आप ही एक निश्चल और निर्विकल्प हैं। आप भयोंको भय देनेवाले हैं, भयंकरोंमें भयकर हैं, प्राणियोंकी गति हैं और पावनोंको पावन करनेवाले हैं। अत्यन्त उच्च पदोंके आप ही नियन्त्रण करनेवाले हैं, आप परसे पर हैं, रक्षण करनेवालोंका भी रक्षण करनेवाले हैं। हम

आपका स्मरण करते हैं, हम आपको भजते हैं। हम आपको जगत्के साक्षिरूपमें नमस्कार करते हैं। आप ही एकमात्र सत्यस्वरूप हैं, निधान हैं, अवलम्बनरहित हैं, इसलिये संसारसागरके नौकारूप आप ईश्वरकी हम शरण लेते हैं। (तन्त्रोक्तस्तवपंचक)

प्रह्लादकी प्रार्थना

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥

'वर देनेवालोंमें शिरोमणि मेरे स्वामी! यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना ही चाहते हैं तो मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें कभी, किसी भी कामनाका—चाहका बीज ही अङ्कुरित न हो।' (श्रीमद्भा० ७।१०।७)

महर्षि आपस्तम्बकी प्रार्थना

को नु मे स्यादुपायो हि येनाहं दुःखितात्मनाम्।
अन्तः प्रविश्य भूतानां भवेयं सर्वदुःखभुक्॥
यन्ममास्ति शुभं किञ्चित्तद्दीनानुपगच्छतु।
यत् कृतं दुष्कृतं तैश्च तदशेषमुपैतु माम्॥
नरकं यदि पश्यामि वत्स्यामि स्वर्ग एव वा॥
यन्मया सुकृतं किञ्चिन्मनोवाक्कायकर्मभिः।
कृतं तेनापि दुःखार्तास्सर्वे यान्तु शुभां गतिम्॥

'मेरे लिये वह कौन-सा उपाय है, जिससे मैं दुःखित चित्तवाले सम्पूर्ण जीवोंके भीतर प्रवेश करके अकेला ही सबके दुःखोंको भोगता रहूँ। मेरे पास जो कुछ भी पुण्य है, वह सभी दीन-दुःखियोंके पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ पाप किया हो, वह सब मेरे पास आ जाय। भले ही मैं नरकको देखूँ या स्वर्गमें निवास करूँ, किंतु मेरेद्वारा मन, वाणी, शरीर और क्रियासे जो कुछ पुण्यकर्म बना हो, उससे सभी दुःखार्त प्राणी शुभगतिको प्राप्त हों।' (स्कन्दपुराण, रेवाखण्ड)

रन्तिदेवकी प्रार्थना

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

'मैं भगवान्से आठों सिद्धियोंसे युक्त परमगति और अपुनर्भव—मोक्ष नहीं चाहता। मैं केवल यही चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर उन सबके सारे दुःख मैं ही भोगूँ, जिससे (फिर) किसी भी प्राणीको दुःख न हो—सभी दुःखसे सदाके लिये छूट जायँ।' (श्रीमद्भा० ९।२१।१२)

वृत्रासुरकी प्रार्थना

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

'हे हरे! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि अनन्यभावसे आपके चरणकमलोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा करनेका अवसर मुझे अगले जन्ममें भी प्राप्त हो। हे प्राणनाथ! मेरा मन आपके मंगलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और शरीर आपकी ही सेवामें संलग्न रहे। हे सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर न स्वर्ग चाहता हूँ, न ब्रह्माका पद, न सम्पूर्ण भूमण्डलका साम्राज्य, न रसातलका एकछत्र राज्य और न योगकी सिद्धियाँ ही—यहाँतक कि मैं अपुनर्भव—मोक्ष भी नहीं चाहता। जैसे पक्षियोंके बिना पाँख उगे बच्चे अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ—गौका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये व्याकुल रहती है, वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है। (श्रीमद्भा० ६।११।२४—२६)

भीष्मकी प्रार्थना

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥

'जिनका दिव्य देह त्रिभुवनसुन्दर एवं श्याम तमालके समान श्यामवर्ण है, जिसपर सूर्यकी रश्मियोंके समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और कमल-सदृश श्रीमुखपर घुँघराली अलकावली लटकती रहती है; उन अर्जुनके सखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट रति—प्रीति हो।' (श्रीमद्भा० १।९।३३)

कुन्तीकी प्रार्थना

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥
नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः॥

'जगद्गुरो श्रीकृष्ण! हमलोगोंके जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन होनेपर फिर पुनर्जन्मका चक्र मिट जाता है। ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका मद बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिंचन हैं। आप अकिंचनोंके (जिनके पास कुछ भी अपना नहीं है, उन निर्धनोंके) परम धन हैं। आप मायाके प्रपंचसे सर्वथा निवृत्त हैं, नित्य आत्माराम और परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्यमोक्षके अधिपति हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ।' (श्रीमद्भा० १।८।२५—२७)

बिल्वमंगलकी प्रार्थना

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे॥

हे देव! हे दयित! हे त्रिभुवनके अद्वितीय बन्धु! हे कृष्ण! हे लीलामय! हे करुणाके एकमात्र सिन्धु! हे नाथ! हे प्रियतम! हे नयनाभिराम! हाय, हाय, मैं तुम्हारे चिन्मय स्वरूपको कब देख पाऊँगा?

श्रीशंकराचार्यकी प्रार्थना

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥
दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे॥
सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥
उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्॥
दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द।
भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु॥

'हे भगवान् विष्णु! मेरा अविनय दूर कीजिये, मेरे मनका दमन कीजिये और विषयोंकी मृगतृष्णाको शान्त कर दीजिये। जगत्में प्राणिमात्रके प्रति दयाभावनाका विस्तार कीजिये और इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। मैं भगवान् श्रीपतिके उन चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ; जिनका मकरन्द गंगा और सौरभ सच्चिदानन्द है तथा जो संसार (जन्म-मरण)-के भयका तथा खेदका छेदन करनेवाले हैं। हे नाथ! (वस्तुतः मुझमें और आपमें) भेद नहीं है, तथापि मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं; क्योंकि तरंग ही समुद्रकी होती है, समुद्र तरंगका कहीं नहीं होता। हे गोवर्द्धनगिरिको उठानेवाले! हे इन्द्रके अनुज (वामन)! हे दानवकुलके शत्रु! हे सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रवाले! आपके सदृश प्रभुके दर्शन हो जानेपर क्या भव (जन्म-मरण)-का लोप नहीं हो जाता? हे परमेश्वर! मत्स्यादि अवतारोंमें अवतरित होकर वसुधाकी सर्वदा रक्षा करनेवाले आपके द्वारा संसारके तापोंसे भयभीत क्या मैं रक्षाके योग्य नहीं हूँ?

हे गुणोंके मन्दिर दामोदर! हे सुन्दर मुखारविन्दवाले गोविन्द! संसार-सागरका मन्थन करनेके लिये मन्दर (पर्वत)! मेरे महान् भयको आप मिटाइये। हे करुणामय नारायण! मैं सब प्रकारसे आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करूँ। यह छः पदोंके रूपमें की गयी प्रार्थनारूप भ्रमरी सदा मेरे मुखकमलमें निवास करे।'

श्रीयामुनाचार्यकी प्रार्थना

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥
निमज्जतोऽनन्तभवार्णवान्त-
श्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानी-
मनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥

'मैं न धर्मनिष्ठ हूँ न आत्मज्ञानी हूँ और न आपके चरणारविन्दोंका भक्त ही हूँ। मैं तो अकिंचन हूँ, अनन्यगति हूँ और शरणागतरक्षक आपके चरणकमलोंकी शरण आया हूँ। संसारमें ऐसा कोई निन्दित कर्म नहीं है, जिसको हजारों बार मैंने न किया हो। ऐसा मैं अब फलभोगके समयपर विवश (अन्य-साधनहीन) होकर, हे मुकुन्द! आपके आगे बारम्बार रोता—क्रन्दन करता हूँ। अनन्त महासागरके भीतर डूबते हुए मुझको आज अति विलम्बसे आप तटरूप होकर मिले हैं और हे भगवन्! आपको भी आज यह दयाका अनुपम पात्र मिला है।' (श्रीआलवन्दारस्तोत्र)

श्रीनिम्बार्काचार्यकी प्रार्थना

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

'जो उन्हीं श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वामांगमें प्रसन्नतापूर्वक विराजमान हो रही हैं, जिनका रूप-शील-सौभाग्य अपने प्रियतमके सर्वथा अनुरूप है, सहस्रों सखियाँ सदा जिनकी सेवाके लिये उद्यत रहती हैं, उन सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको देनेवाली देवी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका हम सदा स्मरण करें।'

श्रीचैतन्यदेवकी प्रार्थना

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥
नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥

'हे जगदीश! मुझे धन, जन, कामिनी, कविता—कुछ भी नहीं चाहिये (मुक्ति भी नहीं चाहिये)—बस, जन्म-जन्ममें मेरी आप ईश्वरमें अहैतुकी भक्ति हो। हे गोविन्द! वह दिन कब होगा, जब आपका नाम लेनेपर मेरी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होगी, मेरी वाणी प्रेमावेगसे गद्‌गद हो जायगी और मेरा शरीर पुलकित हो जायगा।' (शिक्षाष्टक)

श्रीसूरदासजीकी प्रार्थना

तुम तजि और कौन पै जाऊँ।
काके द्वार जाइ सिर नाऊँ, पर हथ कहाँ बिकाऊँ॥
ऐसो को दाता है समरथ, जाके दिये अघाऊँ।
अंतकाल तुमरो सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं पाऊँ॥
रंक अयाची कियो सुदामा, दियो अभय पद ठाऊँ।
कामधेनु चिंतामनि दीनो, कलप-बृच्छ तर छाऊँ॥
भवसमुद्र अति देखि भयानक, मनमें अधिक डराऊँ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनो पन, सूरदास बलि जाऊँ॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी प्रार्थना

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥
मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

गमें
प-
है,
घ्रत
ली
ग

भक्त और भगवान्

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—दुर्वासाजी! मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे।

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥

ब्रह्मन्! अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ। इसलिये अपने साधुस्वभाव भक्तोंको छोड़कर मैं न तो अपने-आपको चाहता हूँ और न अपनी अर्धांगिनी विनाशरहित लक्ष्मीको।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक—सबको छोड़कर केवल मेरी शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका संकल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ।

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥

जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरे साथ अपने हृदयको प्रेम-बन्धनसे बाँध रखनेवाले समदर्शी साधु भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं।

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम्॥

मेरे अनन्यप्रेमी भक्त सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण—कृतकृत्य मानते हैं। मेरी सेवाके फलस्वरूप जब उन्हें सालोक्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तब वे उन्हें भी स्वीकार करना नहीं चाहते, फिर समयके फेरसे नष्ट हो जानेवाली वस्तुओंकी तो बात ही क्या है!

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

दुर्वासाजी! मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय स्वयं मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्यारे उद्धव! मेरा भक्त कृपाकी मूर्ति होता है। वह किसी भी प्राणीसे वैरभाव नहीं रखता और घोर-से-घोर दुःख भी प्रसन्नतापूर्वक सहता है। उसके जीवनका सार है सत्य और उसके मनमें किसी प्रकारकी पापवासना कभी नहीं आती। वह समदर्शी और सबका भला करनेवाला होता है।

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥

उसकी बुद्धि कामनाओंसे कलुषित नहीं होती। वह संयमी, मधुरस्वभाव और पवित्र होता है। संग्रह-परिग्रहसे सर्वथा दूर रहता है। किसी भी वस्तुके लिये वह कोई चेष्टा नहीं करता। परिमित भोजन करता है और शान्त रहता है। उसकी बुद्धि स्थिर होती है। उसे केवल मेरा ही भरोसा होता है और वह आत्मतत्त्वके चिन्तनमें सदा संलग्न रहता है।

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥

वह प्रमादरहित, गम्भीरस्वभाव और धैर्यवान् होता है। भूख-प्यास, शोक-मोह और जन्म-मृत्यु—ये छहों उसके वशमें रहते हैं। वह स्वयं तो कभी किसीसे किसी प्रकारका सम्मान नहीं चाहता, परंतु दूसरोंका सम्मान करता रहता है। मेरे सम्बन्धकी बातें दूसरोंको समझानेमें बड़ा निपुण होता है और सभीके साथ मित्रताका व्यवहार करता है। उसके हृदयमें करुणा भरी होती है। मेरे तत्त्वका उसे यथार्थ ज्ञान होता है।

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

जिसने अपनेको मुझे सौंप दिया है, वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्माका पद चाहता है और न देवराज इन्द्रका, उसके मनमें न तो सार्वभौम सम्राट् बननेकी इच्छा होती है और न वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ रसातलका ही स्वामी होना चाहता है। वह योगकी बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्षतककी अभिलाषा नहीं करता।

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

उद्धव! मुझे तुम्हारे-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर, सगे भाई बलरामजी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

जिसे किसीकी अपेक्षा नहीं, जो जगत्‌के चिन्तनसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तनमें तल्लीन रहता है और राग-द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है, उस महात्माके पीछे-पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूलि उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

जिसकी वाणी प्रेमसे गद्‌गद हो रही है, चित्त पिघलकर एक ओर बहता रहता है, एक क्षणके लिये भी रोनेका ताँता नहीं टूटता, परंतु जो कभी-कभी खिलखिलाकर हँसने भी लगता है, कहीं लाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है, तो कहीं नाचने लगता है, भैया उद्धव! मेरा वह भक्त न केवल अपनेको, बल्कि सारे संसारको पवित्र कर देता है।

श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम॥

जो मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहता हो, वह मेरी अमृतमयी कथामें श्रद्धा रखे, निरन्तर मेरे गुण-लीला और नामोंका संकीर्तन करे, मेरी पूजामें अत्यन्त निष्ठा रखे और स्तोत्रोंके द्वारा मेरी स्तुति करे।

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥

मेरी सेवा-पूजामें प्रेम रखे और सामने साष्टांग लोटकर प्रणाम करे, मेरे भक्तोंकी पूजा मेरी पूजासे बढ़कर करे और समस्त प्राणियोंमें मुझे ही देखे।

कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन्।
मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः॥

उद्धवजी! मेरे भक्तको चाहिये कि अपने सारे कर्म मेरे लिये ही करे और धीरे-धीरे उनको करते समय मेरे स्मरणका अभ्यास बढ़ाये। कुछ ही दिनोंमें उसके मन और चित्त मुझमें समर्पित हो जायँगे। उसके मन और आत्मा मेरे ही धर्मोंमें रम जायँगे।

देशान् पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान्।
देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च॥

मेरे भक्त साधुजन जिन पवित्र स्थानोंमें निवास करते हों, उन्हींमें रहे और देवता, असुर अथवा मनुष्योंमें जो मेरे अनन्य भक्त हों, उनके आचरणोंका अनुसरण करे।

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥

मेरी प्राप्ति के जितने साधन हैं, उनमें मैं तो सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें मन, वाणी और शरीरकी समस्त वृत्तियोंसे मेरी ही भावना की जाय। [श्रीमद्भागवत]
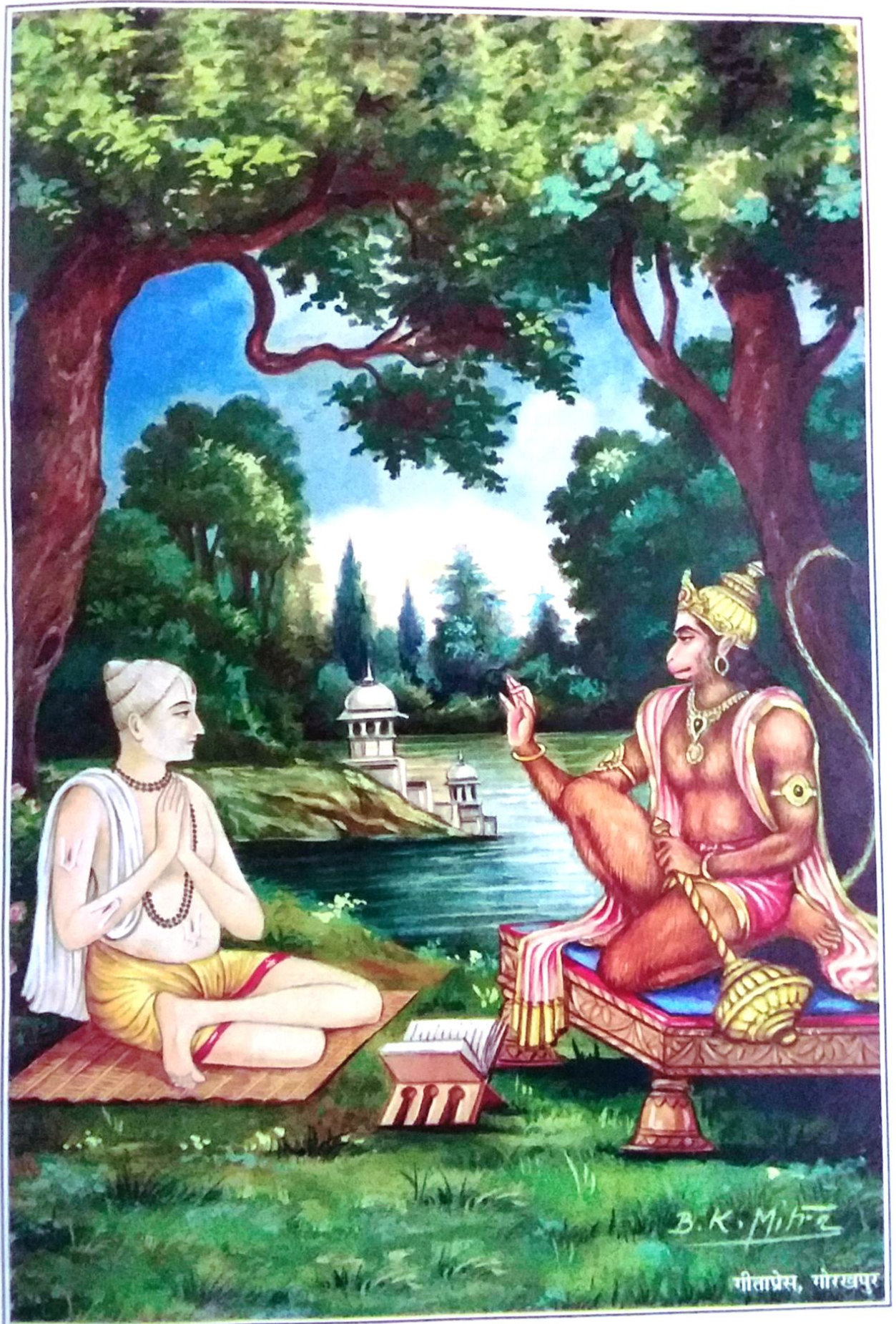
भक्तशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीपर श्रीहनुमान्‌जीकी कृपा
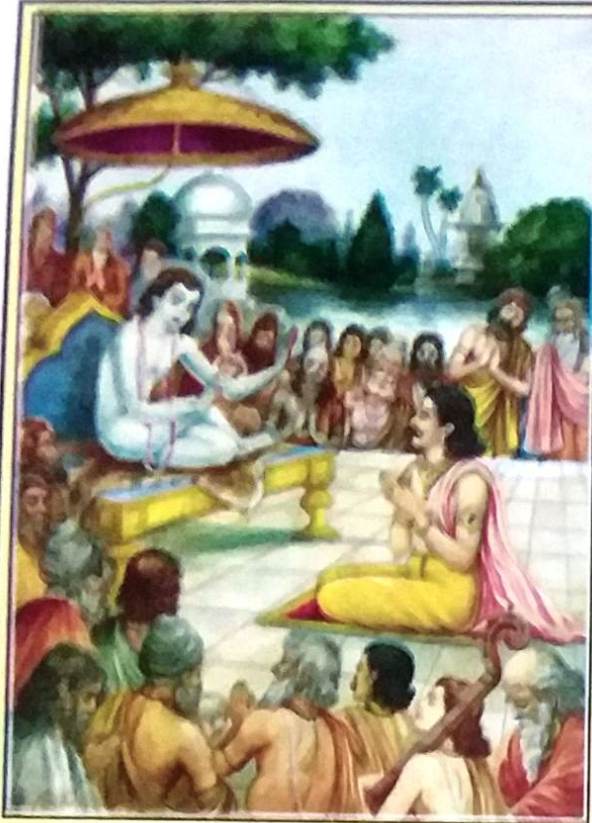
श्रीशुकदेवजी और राजा परीक्षित्
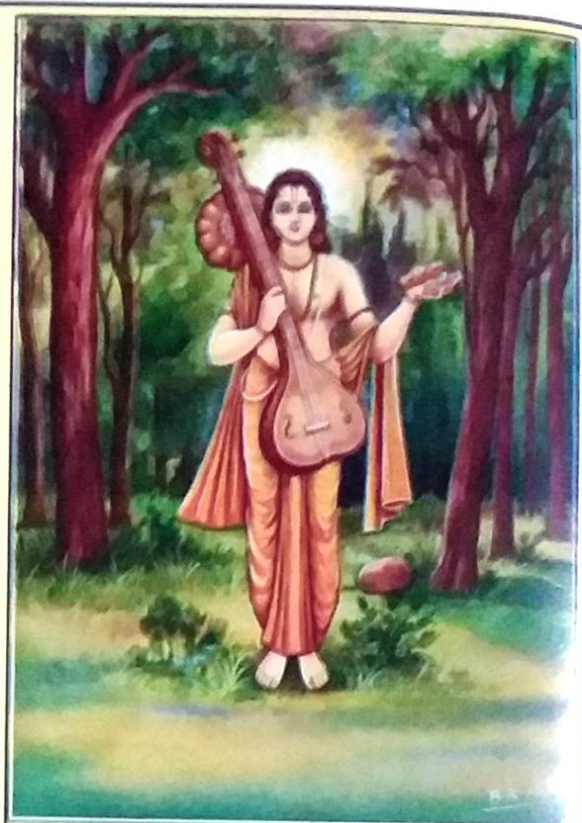
संकीर्तनके आचार्य देवर्षि नारद

भगवान् नृसिंहकी गोदमें भक्त प्रह्लाद
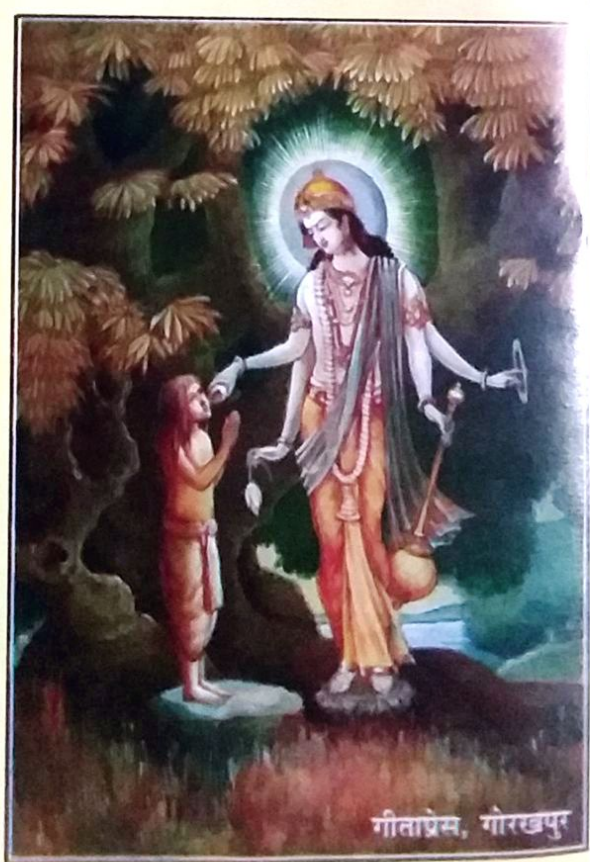
भक्त ध्रुवपर भगवान्का अनुग्रह
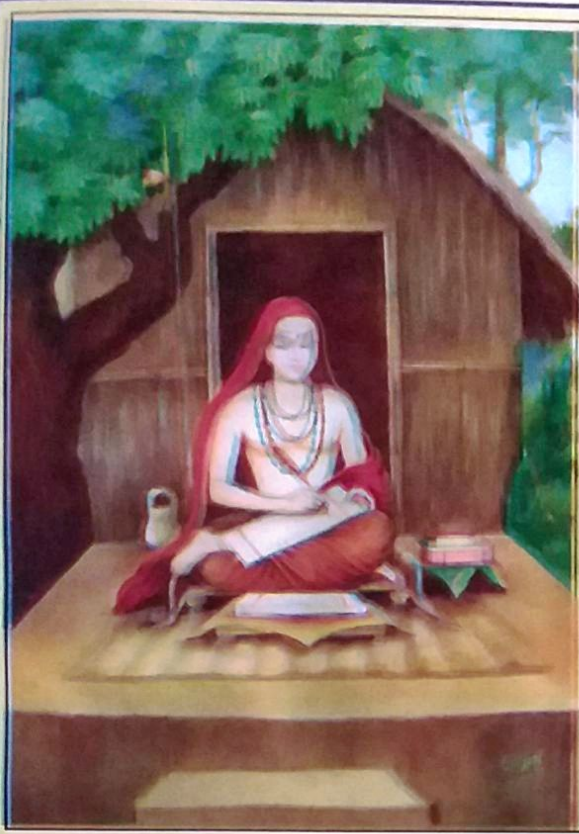
श्रीमदाद्यशंकराचार्य

श्रीवल्लभाचार्य
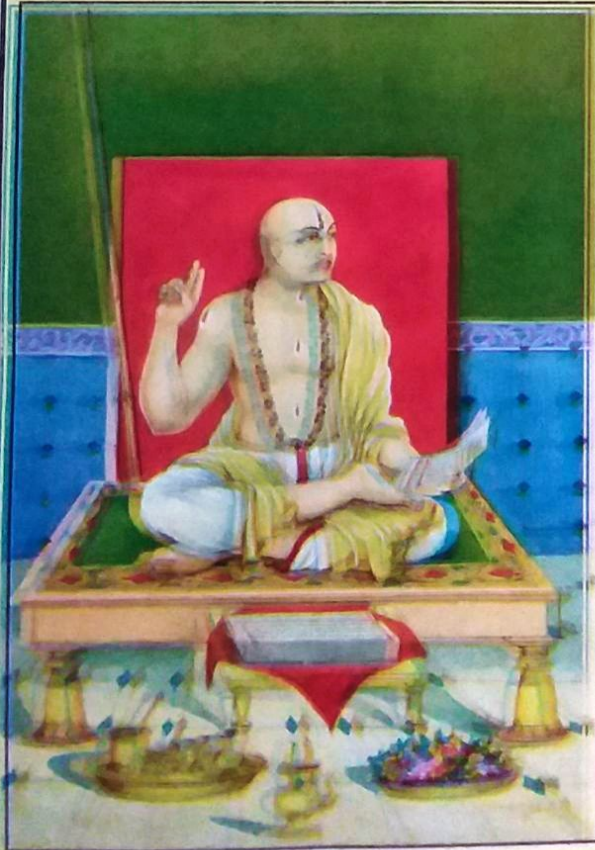
श्रीमध्वाचार्य
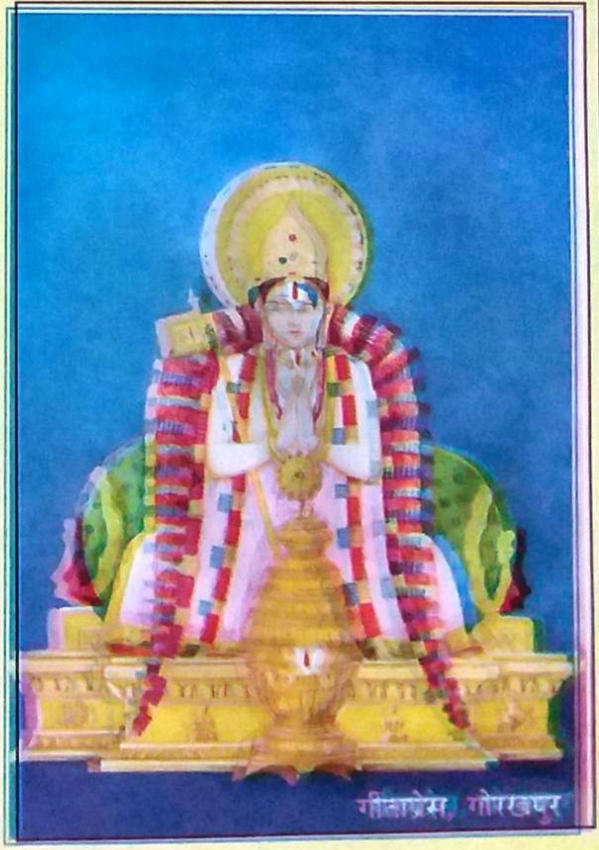
श्रीरामानुजाचार्य
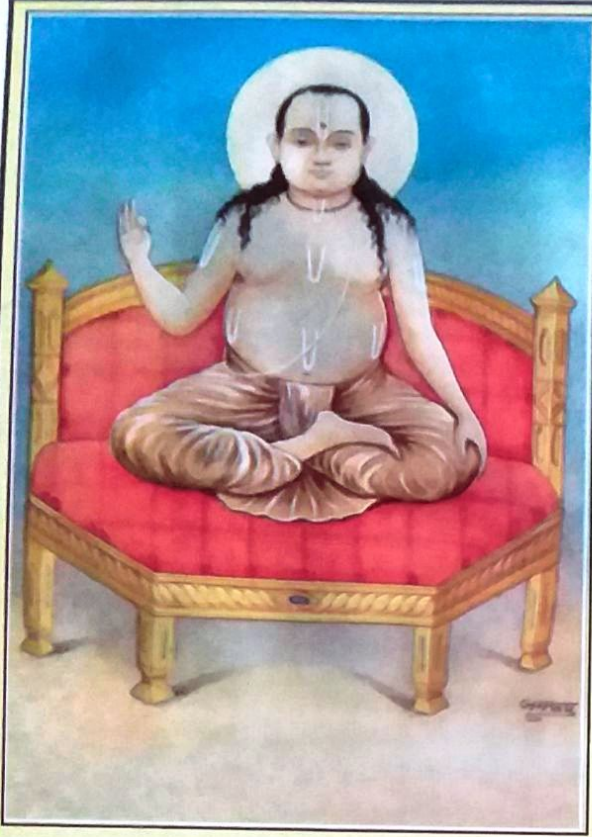
श्रीनिम्बार्काचार्य
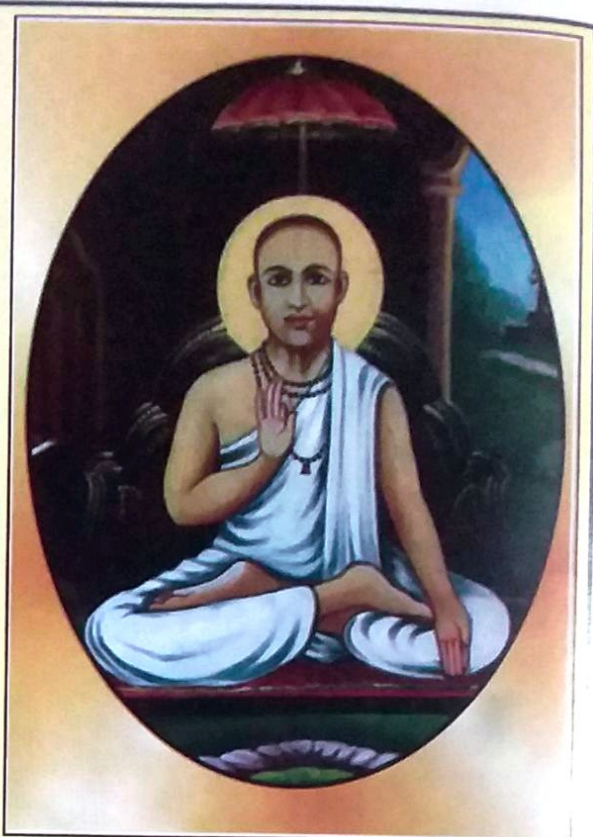
आचार्य श्रीविष्णुस्वामी
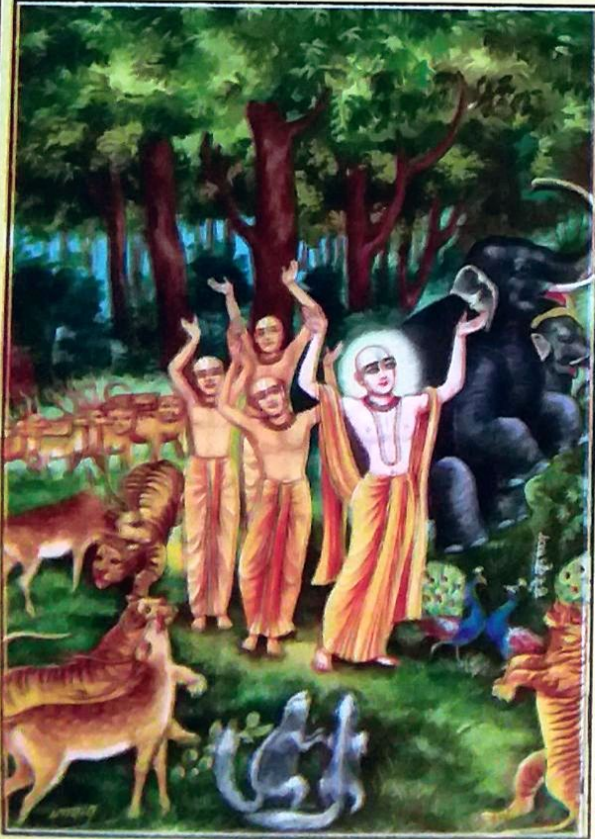
श्रीचैतन्यमहाप्रभुका प्रेमोन्माद
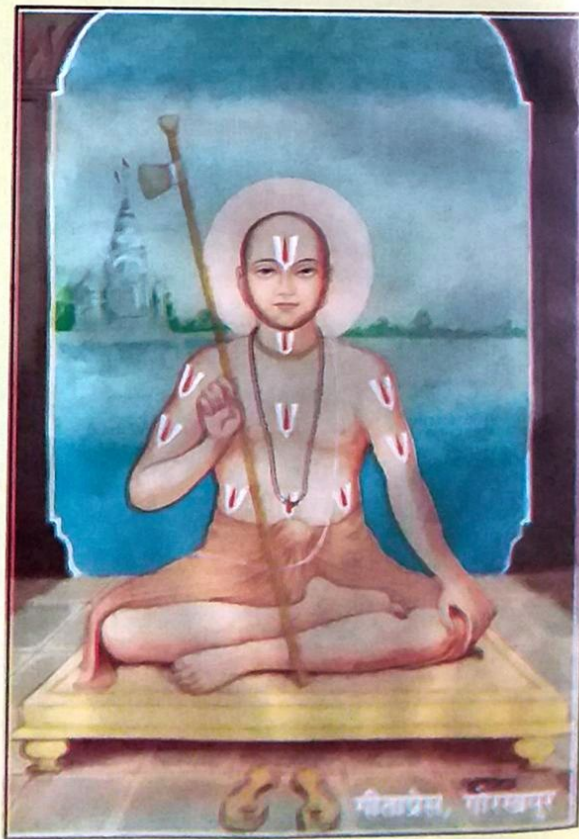
श्रीरामानन्दाचार्य

भक्तिमती मीराका विषपान
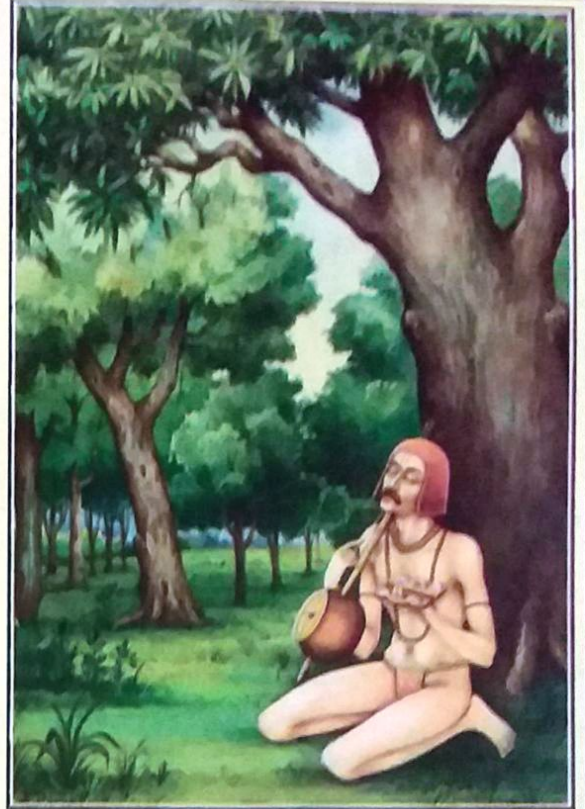
भक्त श्रीसूरदास
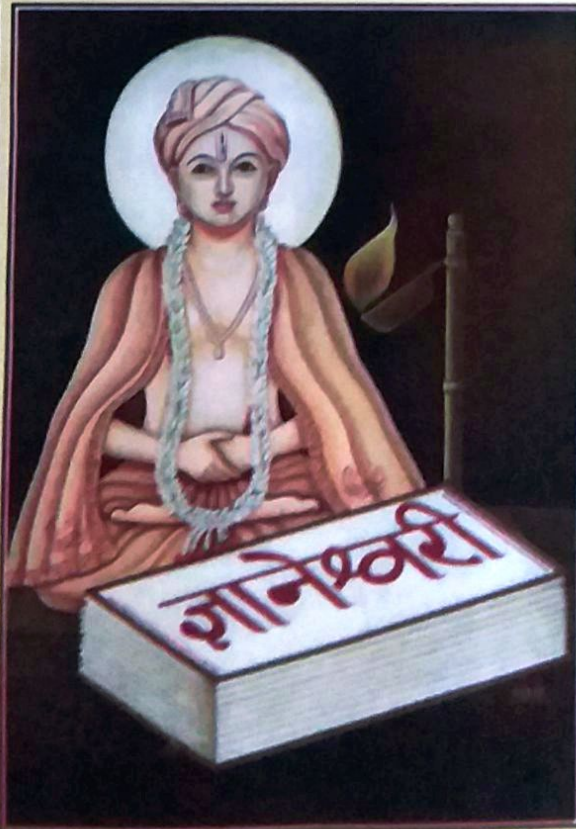
संत ज्ञानेश्वर
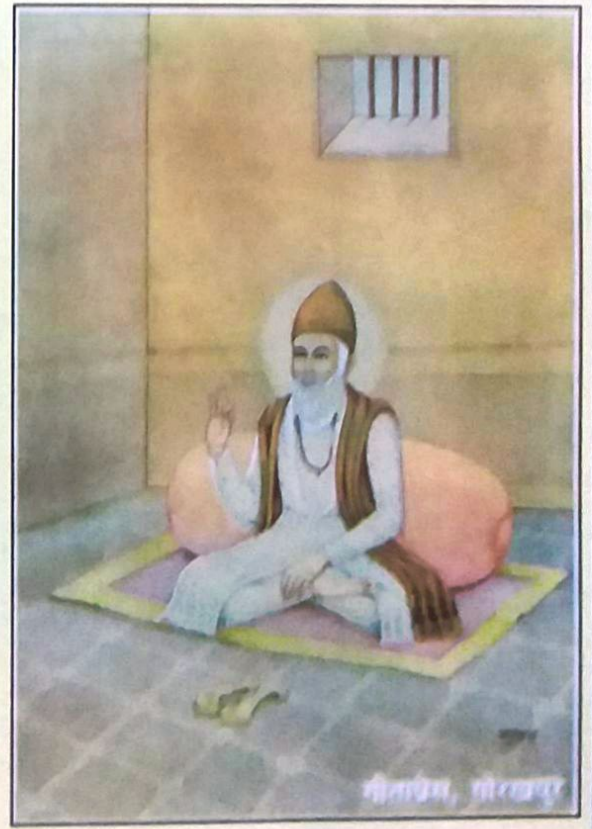
संत कबीरदास

भक्त सुदामाका ऐश्वर्य
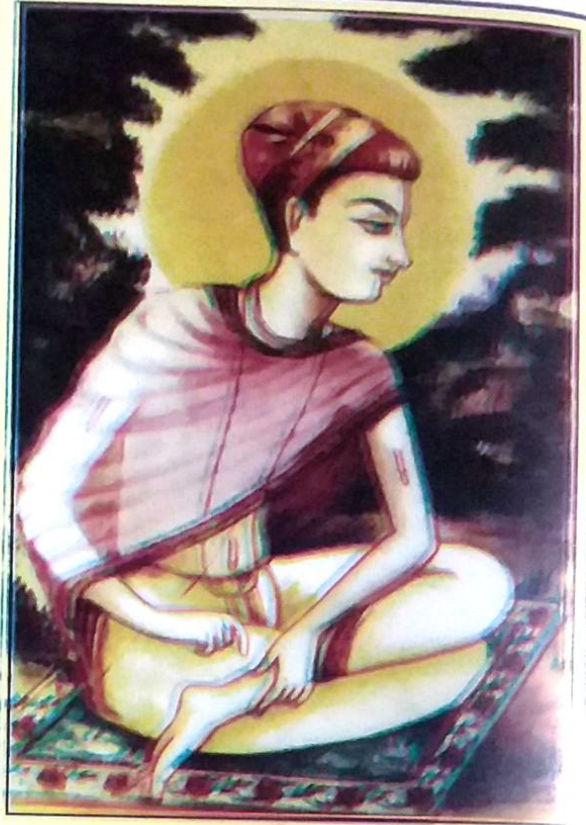
श्रीहितहरिवंशजी गोस्वामी
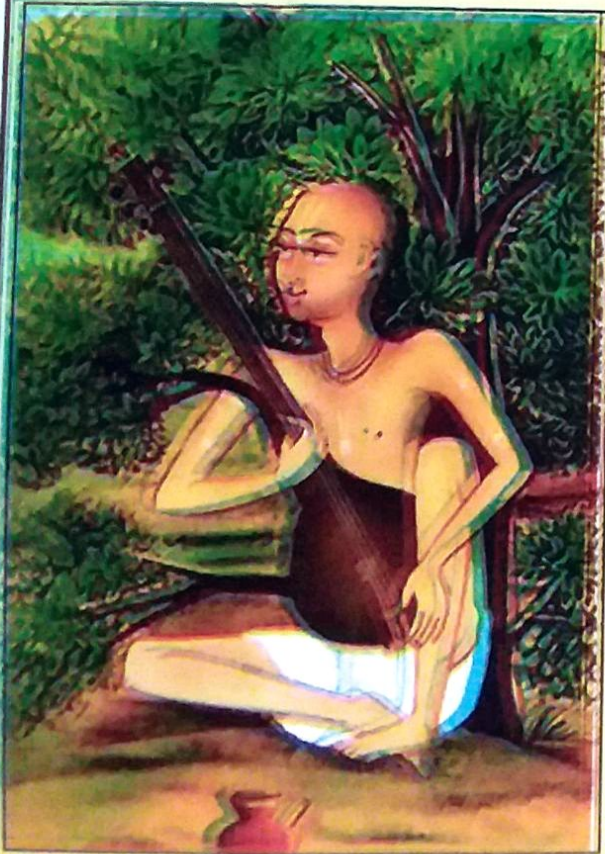
स्वामी श्रीहरिदासजी

भक्त जयदेव

भक्त बिल्वमंगल

श्रीशठकोपाचार्य

भक्त नरसीमेहता

संत नामदेव

व्रजमण्डलके संकीर्तनमें महाभागवत श्रीउद्धवजीका प्राकट्य

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभक्तमाल

श्रीनाभादासजीकृत भक्तमालका मंगलाचरण

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इन के पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥ १॥
मंगल आदि बिचारि रहि बस्तु न और अनूप।
हरिजन को जस गावते हरिजन मंगलरूप॥ २॥
संतन निरनै कियो मथि श्रुति पुरान इतिहास।
भजिबे को दोई सुघर कै हरि कै हरिदास॥ ३॥
(श्रीगुरु) अग्रदेव आग्या दई भक्तन को जस गाउ।
भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ॥ ४॥

भगवान्‌के भक्त, भगवान्‌की भक्ति, भगवान् और भगवत्तत्त्वका बोध करानेवाले गुरुदेव—ये अलग-अलग चार नाम और चार वपु हैं, पर वास्तवमें इनका वपु (स्वरूप—तत्त्व) एक ही है। इनके श्रीचरणोंकी वन्दना करनेसे समस्त विघ्नोंका पूर्णरूपसे नाश हो जाता है॥ १॥ ग्रन्थके आरम्भमें मंगलाचरणके सम्बन्धमें विचार करनेपर यही समझमें आता है कि भक्त-चरित्रोंके समान दूसरी और कोई वस्तु सुन्दर नहीं है, जिससे मंगलाचरण किया जाय। भगवद्भक्तोंका चरित्रगान करनेमें भगवद्भक्त ही मंगलरूप हैं॥ २॥ वेद, पुराण, इतिहास आदि सभी शास्त्रोंने तथा सभी साधु-सन्तोंने यही निर्णय किया है कि भजन, आराधनाके लिये भगवान् या भगवान्‌के भक्त—दो ही सबसे सुन्दर हैं॥ ३॥ स्वामी श्रीअग्रदेवजी (श्रीअग्रदासजी)-ने मुझ नारायणदास (नाभादास)-को आज्ञा दी कि भक्तोंका यशोगान करो; क्योंकि संसार-सागरसे पार होनेका इससे सरल दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ ४॥

श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीकाका मंगलाचरण

महाप्रभु कृष्णचैतन्य मनहरनजू के चरण कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइये।
ताही समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥
कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै जगै जग माहिं कहि वाणी विरमाइये।
जानों निजमति ऐ पै सुन्यौ भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियो ऐसेई कहाइये॥ १॥

श्रीप्रियादासजी भक्तमालकी भक्तिरसबोधिनी टीकाका मंगलाचरण एवं इस टीकाके लिखे जानेका हेतु बताते हुए कहते हैं कि एक बार मैं महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य एवं गुरुदेव श्रीमनोहरदासजीके श्रीचरणकमलका हृदयमें ध्यान और मुखसे नाम-संकीर्तन कर रहा था, उसी समय श्रीनाभाजीने मुझे

आज्ञा दी, जिसे मैंने शिरोधार्य कर लिया। वह आज्ञा यह थी कि श्रीभक्तमालकी विस्तारपूर्वक टीका करके सुनाइये। टीका कवित्त छन्दोंमें कीजिये, जो कि अत्यन्त प्रिय लगे और सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध हो। इस प्रकार भक्तोंका चरित्र कहकर अपनी वाणीको विश्राम दीजिये अर्थात् भक्तोंका चरित्र कहनेमें वाणीको लगा दीजिये। ऐसा कहकर श्रीनाभाजीने वाणीको विश्राम दिया, तब मैंने भावनामें ही निवेदन किया कि मैं तो अपनी बुद्धिको जानता हूँ कि वह टीका करनेमें सर्वथा असमर्थ है, परंतु मैंने श्रीमद्भागवतमें सुना है कि श्रीशुकदेवजी वृक्षोंमें प्रवेश करके स्वयं बोले थे, वैसे ही आप भी मेरी जड़मतिमें प्रवेश करके टीकाकी रचना करा लेंगे॥ १॥

भक्तिरसबोधिनी टीकाका नामस्वरूप-वर्णन

रची कविताई सुखदाई लागै निपट सुहाई औ सचाई पुनरुक्ति लै मिटाई है।
अक्षर मधुरताई अनुप्रास जमकाई अति छवि छाई मोद झरी सी लगाई है॥
काव्य की बड़ाई निज मुख न भलाई होति नाभाजू कहाई, याते प्रौढ़िकै सुनाई है।
हृदै सरसाई जो पै सुनिये सदाई, यह 'भक्तिरसबोधिनी' सुनाम टीका गाई है॥ २॥

इस कवित्तमें श्रीप्रियादासजी अपने काव्यकी विशेषताएँ एवं टीकाका नाम बताते हुए कहते हैं कि मैंने टीका-काव्यकी ऐसी रचना की है, जो पाठकों और श्रोताओंको सुख देनेवाली है और अत्यन्त सुहावनी लगती है। इसमें सचाई है अर्थात् सत्य-सत्य कहा गया है। पुनरुक्ति दोषको मिटा दिया गया है। अक्षरोंकी मधुरता, अनुप्रास और यमक आदि अलंकारोंसे अत्यन्त सुशोभित होकर इस टीका-काव्यने आनन्दकी झरी-सी लगा दी है। अपने काव्यकी अपने मुखसे प्रशंसा करना अच्छा नहीं होता, परंतु इसे तो श्रीनाभाजीने कहवाया है, इसीसे इसकी प्रशंसा नि:शंक होकर दृढ़तापूर्वक सुनायी है। यदि नीरस हृदयवाला व्यक्ति भी सदा इसका श्रवण करे तो उसके हृदयमें सरसता होगी और सरस हृदयवालेके लिये बारम्बार सुननेपर भी यह टीका उत्तरोत्तर सरस प्रतीत होगी। ऐसी यह 'भक्तिरसबोधिनी' सुन्दर नामवाली टीका गायी है, जो भक्तिके सभी रसोंका बोध करानेवाली है॥ २॥

श्रीभक्तिदेवीका शृंगार

श्रद्धाई फुलेल औ उबटनौ श्रवण कथा मैल अभिमान अंग अंगनि छुड़ाइये।
मनन सुनीर अन्हवाइ अंगुछाइ दया नवनि वसन पन सोधो लै लगाइये॥
आभरन नाम हरि साधु सेवा कर्णफूल मानसी सुनथ संग अंजन बनाइये।
भक्ति महारानीकौ सिंगार चारु बीरी चाह रहै जो निहारि लहै लाल प्यारी गाइये॥ ३॥

शृंगारित रूप विशेष आकर्षक होता है, अत: इष्टदेवको प्रसन्न करनेके लिये टीकाकारने इस कवित्तमें श्रीभक्तिदेवीके शृंगारका वर्णन एक रूपकके द्वारा किया है। भक्तिदेवीके श्रीविग्रहकी निर्मलताके लिये श्रद्धारूपी फुलेलसे शुष्कता दूरकर कथाश्रवणरूपी उबटन लगाइये और अहंकाररूपी मैलको प्रत्येक अंगसे छुड़ाइये। फिर मननके सुन्दर जलसे स्नान कराकर दयाके अँगोछेसे पोंछिये। उसके बाद नम्रताके वस्त्र पहनाकर भक्तिमें प्रतिज्ञारूपी सुगन्धित द्रव्य लगाइये। फिर नाम-संकीर्तनरूप अनेक आभूषण, हरि और साधुसेवाके कर्णफूल तथा मानसी सेवाकी सुन्दर नथ पहनाइये। फिर सत्संगरूपी अंजन लगाइये। जो भक्तिमहारानीका इस प्रकार शृंगार करके फिर उन्हें अभिलाषारूपी बीड़ा (पान) अर्पण करके उनके सुन्दर स्वरूपका दर्शन करता रहे, वह श्रीप्रिया-प्रियतमको प्राप्त करता है। ऐसा सन्तों एवं शास्त्रोंने गाया है॥ ३॥

भक्तिरसबोधिनी टीकाकी महिमा

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, औ शृंगारु चारु, पाँचों रस सार विस्तार नीके गाये हैं।
टीका को चमत्कार जानौगे विचारि मन, इनके स्वरूप मैं अनूप लै दिखाये हैं॥
जिनके न अश्रुपात पुलकित गात कभू, तिनहूँ को भाव सिंधु बोरि सो छकाये हैं।
जौलौं रहैं दूर रहैं विमुखता पूर हियो, होय चूर चूर नेकु श्रवण लगाये हैं॥ ४॥

इस कवित्तमें टीकाकार टीकाकी विशेषता बताते हुए कहते हैं कि इस भक्तिरसबोधिनी-टीकामें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार—भक्तिके इन पाँचों रसोंका तत्त्व विस्तारसे अच्छी प्रकार वर्णन किया गया है। इनके सुन्दर स्वरूपोंको जैसा मैंने भलीभाँति उत्तम रीतिसे वर्णन करके दिखाया है, इस चमत्कारको पाठक एवं श्रोता अपने मनमें अच्छी तरहसे विचार करनेपर ही जानेंगे। श्रवण, कीर्तन आदि करके प्रेमवश जिनके नेत्रोंमें कभी भी आनन्दके आँसू नहीं आते हैं और शरीरमें रोमांच नहीं होता है, ऐसे नीरस, कठोर हृदयवाले लोगोंको भी भक्तिके भावरूपी समुद्रमें डुबाकर तृप्त कर दिया गया है। जबतक वे इससे दूर हैं, तभीतक भक्तिसे पूर्ण विमुख हैं, किंतु यदि कान लगाकर इसका थोड़ा भी श्रवण करेंगे तो उनका हृदय चूर-चूर होकर रससे परिपूर्ण हो जायगा॥ ४॥

भक्तमालकी महिमा

पंच रस सोई पंच रंग फूल थाके नीके, पीके पहिराइवे को रचिकै बनाई है।
वैजयन्ती दाम भाववती अलि 'नाभा', नाम लाई अभिराम श्याम मति ललचाई है॥
धारी उर प्यारी, किहूँ करत न न्यारी, अहो! देखौ गति न्यारी ढरिपायनको आई है।
भक्ति छबिभार, ताते, नमितशृंगार होत, होत वश लखै जोई याते जानि पाई है॥ ५॥

प्रस्तुत कवित्तमें श्रीभक्तमालको पंचरंगी वैजयन्ती माला बताकर उसकी महिमा, सुन्दरता और भगवत्प्रियताका वर्णन किया गया है। पूर्व कवित्तमें कहे गये पाँच रस ही मानो फूलोंके सुन्दर गुच्छे हैं, भाववती नाभा नामकी सखीने अपने प्रियतमको पहनानेके लिये इसे अच्छी तरहसे बनाया है। यह वैजयन्ती माला इतनी सुन्दर है कि लोकाभिराम श्यामसुन्दर श्रीरामकी बुद्धि भी इसे देखकर ललचा गयी। उन्होंने इस प्यारी वनमालाको अपने वक्षःस्थलपर धारण किया, उन्हें यह इतनी प्रिय लगी कि इसे वे कभी भी अपने कण्ठसे अलग नहीं करते हैं। इस मालाकी विचित्र गति तो देखिये कि भगवान्ने इसे कण्ठमें धारण किया और यह लटककर श्रीचरणोंमें आ लगी है। इस मालामें भक्तिकी सुन्दरताका भार है, इसीसे झुकी है। पंचरंगी भक्तमाल पहने हुए श्यामसुन्दरका जो दर्शन करता है, वह उनके वशमें होकर उन्हें वशमें कर लेता है। यह रहस्यकी बात भक्तमालके द्वारा जानी गयी है॥ ५॥

संतसंगके प्रभावका वर्णन

भक्ति तरु पौधा ताहि विघ्न डर छेरीहू कौ, वारिदै बिचारि वारि सींच्यो सत्संग सों।
लाग्योई बढ़न, गोंदा चहुँदिशि कढ़न सो चढ़न अकाश, यश फैल्यो बहुरंग सों॥
संत उर आल बाल शोभित विशाल छाया, जिये जीव जाल, ताप गये यों प्रसंग सों।
देखौ बढ़वारि जाहि अजाहू की शंका हुती, ताहि पेड़ बाँधे झूमें हाथी जीते जंग सों॥ ६॥

भक्तिका वृक्ष जब साधकके हृदयमें छोटे-से पौधेके रूपमें होता है, तब उसे हानिका भय

मायारूपी बकरीसे भी होता है, अतः पौधेकी रक्षाके लिये उसके चारों ओर विचाररूपी घेरा (थाला) लगाकर सत्संगरूपी जलसे सींचा जाता है, तब उसमें चारों ओरसे शाखा-प्रशाखाएँ निकलने लगती हैं और वह आकाशकी ओर चढ़ने-बढ़ने लगता है। सरल साधुहृदयरूप थालेमें सुशोभित इस विशाल भक्ति-वृक्षकी छाया अर्थात् सत्संग पाकर त्रिविध तापोंसे तपे जीवसमूह सन्तापरहित होकर परमानन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सार-सम्भार करनेपर इस भक्तिका विचित्ररूपसे बढ़ना तो देखो कि जिसको पहले कभी छोटी-सी बकरीका भी डर था, उसीमें आज महासंग्रामविजयी काम, क्रोध आदि बड़े-बड़े हाथी बँधे हुए झूम रहे हैं, परंतु उस वृक्षको किसी भी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकते हैं॥ ६॥

भक्तमाल-स्वरूपवर्णन

जाको जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो, कियो यों कवित्त पट मिहिं मध्य लाल है।
गुण पै अपार साधु कहैं आँक चारि ही में, अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है॥
सुनि संत सभा झूमि रही, अलि श्रेणी मानो, घूमि रही, कहैं यह कहा धौं रसाल है।
सुने हे अगर अब जाने मैं अगर सही, चोवा भये नाभा, सो सुगंध भक्तमाल है॥ ७॥

जिस भक्तका जैसा सुन्दरस्वरूप है, उसको श्रीनाभाजीने अति उत्तम प्रकारसे अपने काव्यमें स्पष्ट कर दिया है। कविता ऐसी की है कि जैसे महीन वस्त्रके अन्दर रखे हुए माणिक्य रत्नकी चमक बाहर प्रकाश करे, उसी प्रकार कविताकी शब्दावलीसे भक्तस्वरूप प्रकट होता है। साधु-भक्तोंके गुण और उनकी महिमा अपार है, किंतु नाभाजीने सन्तगुरुकृपासे थोड़े ही अक्षरोंमें भक्तोंके गुणोंका ऐसी विचित्रताके साथ वर्णन किया है कि उसके अनेक अर्थ होते हैं और गुणोंका अपार विस्तार हो जाता है। यही सच्चे टकसाली कविकी विशेषता है। सन्तोंकी सभा इसे सुनकर भक्तमाल काव्यका रसास्वादनकर आनन्दविभोर होकर झूम रही है, मानो सन्तरूपी भ्रमरसमूह चरित्ररूपी सुगन्धित पुष्पोंपर मँडरा रहा है। आश्चर्यचकित होकर वे कहते हैं कि यह कैसी विचित्र रसमयी कविता है! मैंने अगर अर्थात् स्वामी श्रीअग्रदेवजीका नाम तो सुना था, परंतु अब मैंने जाना और अनुभव किया कि अगर (श्रीअग्रदेवजी) वस्तुतः अगर (सुगन्धित वृक्ष ही) हैं, जिनसे नाभाजी-जैसा इत्र उत्पन्न हुआ है और जिसकी दिव्य सुगन्ध यह भक्तमाल है॥ ७॥

भक्तमाल-माहात्म्यवर्णन

बड़े भक्तिमान, निशिदिन गुणगान करैं हरैं जगपाप, जाप हियो परिपूर है।
जानि सुख मानि हरिसंत सनमान सचे बचेऊ जगतरीति, प्रीति जानी मूर है॥
तऊ दुराराध्य, कोऊ कैसे कै अराधि सकै, समझो न जात, मन कंप भयो चूर है।
शोभित तिलक भाल माल उर राजै, ऐ पै बिना भक्तमाल भक्तिरूप अति दूर है॥ ८॥

कोई बड़े साधक कैसे ही अच्छे भक्तिमान् हों, रात-दिन भगवान्‌के गुणोंका गान करते हों, संसारके पापोंको हरते हों, जप-ध्यान आदिसे उनका हृदय परिपूर्ण हो, श्रीहरि और सन्तोंके स्वरूपको जानकर सचाईसे उनकी सेवा और उनका आदर भी करते हों तथा उसमें सुख भी मानते हों—जगत्‌के मायिक प्रपंचोंसे बचे भी हों और प्रेमको ही मूलतत्त्व मानते हों—इतनेपर भी भक्तिकी आराधना कठिन है, उसकी आराधना कोई कैसे कर सकता है? विशुद्ध भक्तिका स्वरूप समझमें नहीं आता है, मन कम्पित होकर शिथिल हो जाता है। चाहे मस्तकपर सुन्दर तिलक और गलेमें कण्ठी माला सुशोभित हो, परंतु बिना भक्तमाल-पठन, श्रवण,

मनन और निदिध्यासन किये भक्तिका स्वरूप बहुत दूर है, उसका जानना असम्भव है॥ ८॥

भक्तमालके मंगलाचरणकी भक्तिरसबोधिनी टीका

हरि गुरु दासनि सों साँचो सोई भक्त सही गही एक टेक फेरि उर ते न टरी है।
भक्ति रस रूप कौ स्वरूप यहै छबिसार चारु हरिनाम लेत अँसुवन झरी है॥
वही भगवन्त सन्त प्रीति को विचार करै, धरै दूरि ईशता हू पांडुन सो करी है।
गुरु गुरुताई की सचाई लै दिखाई जहाँ गाई श्री पैहारी जू की रीति रंगभरी है॥ ९॥

भगवान्, गुरुदेव और भक्तोंके प्रति जो सच्चा निष्कपट व्यवहार करता है और भक्तिकी किसी एक प्रतिज्ञाको हृदयमें धारणकर फिर उससे कभी चलायमान नहीं होता है, वही सच्चा भक्त है। रसरूपा भक्तिका सुन्दर स्वरूप यही है कि भगवान्के सुन्दर नामोंको लेते ही आँखोंसे प्रेमके आँसुओंकी झरी लग जाय। ईश्वरताको दूर रखकर जो भक्तोंकी प्रीतिको सदा ध्यानमें रखे, वही भगवान् है, जैसा कि श्रीकृष्णने राजसूययज्ञमें पाण्डवोंके साथ किया है। गुरुदेवकी गुरुताकी सच्चाई भक्तमालमें वहाँ दिखायी गयी है, जहाँ पयोहारी श्रीकृष्णदासजीकी आनन्दमयी अनोखी रीति गायी गयी है॥ ९॥

भक्तमालकी रचनाके लिये श्रीनाभाजीको आज्ञा प्राप्त होना

मानसी स्वरूप में लगे हैं अग्रदास जू वै करत बयार नाभा मधुर सँभार सों।
चढ़्यो हो जहाज पै जु शिष्य एक आपदा में कर्‍यौ ध्यान खिच्यो मन छूट्यो रूप सार सों॥
कहत समर्थ गयो बोहित बहुत दूरि आवो छबि पूरि फिर ढरो ताहि ढार सों।
लोचन उघारि कैं निहारि कह्यौ बोल्यौ कौन! वही जौन पाल्यो सीथ दै दै सुकुवार सों॥ १०॥

एक बारकी बात है, स्वामी श्रीअग्रदेवजी महाराज मानसी सेवामें संलग्न थे और श्रीनाभाजी अतिकोमल एवं मधुर संरक्षणके साथ धीरे-धीरे प्रेमसे पंखा कर रहे थे। उसी समय श्रीअग्रदासजीका एक शिष्य जहाजपर चढ़ा हुआ समुद्रकी यात्रा कर रहा था। उसका जहाज संकट (भँवर)-में फँस गया। चालक निरुपाय हो गये, तब उस शिष्यने श्रीअग्रदासजीका स्मरण किया। उससे श्रीअग्रदासजीका ध्यान अतिसुन्दरस्वरूप भगवान् श्रीसीतारामजीकी सेवासे हट गया। गुरुदेवकी मानसी सेवामें विघ्न समझकर श्रीनाभाजीने पंखेकी वायुसे जहाजको संकटसे पार कर दिया और श्रीगुरुदेवसे नम्र निवेदन किया कि प्रभो! जहाज तो बहुत दूर निकल गया, अब आप उसी शोभापूर्ण भगवान्की सेवामें लग जाइये। यह सुनकर श्रीअग्रदेवजीने आँखें खोलीं और नाभाजीकी ओर देखकर कहा कि अभी कौन बोला? श्रीनाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—जिसे आपने बचपनसे सीथ-प्रसाद देकर पाला है, आपके उसी दासने प्रार्थना की है॥ १०॥

अचरज दयो नयो यहाँ लौं प्रवेश भयो, मन सुख छयो, जान्यो सन्तन प्रभाव को।
आज्ञा तब दई, 'यह भई तोपै साधु कृपा उनहीं को रूप गुन कहो हिये भाव को'॥
बोल्यो कर जोरि, 'याको पावत न ओर छोर, गाऊँ रामकृष्ण नहीं पाऊँ भक्ति दाव को।
कही समुझाइ, 'वोई हृदय आइ कहैं सब, जिन लै दिखाय दई सागर में नाव को'॥ ११॥

(श्रीनाभाजीका उपर्युक्त कथन सुनकर श्रीअग्रदेवजीको) महान् तथा नवीन आश्चर्य हुआ। मनमें विचारने लगे कि इसका यहाँ मेरी मानसी-सेवातक प्रवेश कैसे हो गया और यहींसे जहाजकी रक्षा कैसे की? विचार करते ही उनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे जान गये कि यह सब सन्तोंकी सेवा तथा उनके सीथ-प्रसाद-ग्रहणका ही प्रभाव है, जिससे ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है। तब श्रीअग्रदेवजीने आज्ञा दी कि 'तुम्हारे ऊपर यह

साधुओंकी कृपा हुई है। अब तुम उन्हीं साधु-सन्तोंके गुण, स्वरूप और हृदयके भावोंका वर्णन करो।' इस आज्ञाको सुनकर श्रीनाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं श्रीराम-कृष्णके चरित्रोंको तो कुछ गा भी सकता हूँ, परंतु सन्तोंके चरित्रोंका ओर-छोर नहीं पा सकता हूँ; क्योंकि उनके रहस्य अतिगम्भीर हैं, मैं भक्तोंकी भक्तिके रहस्यको नहीं पा सकता।' तब श्रीअग्रदेवजीने समझाकर कहा—'जिन्होंने तुम्हें मेरी मानसी सेवा और सागरमें नाव दिखा दी, वे ही भक्त भगवान् तुम्हारे हृदयमें आकर सब रहस्योंको कहेंगे और अपना स्वरूप दिखायेंगे'॥ ११॥

श्रीनाभाजीका चरित्र-वर्णन

हनूमान वंश ही में जनम प्रशंस जाको भयो दृगहीन सो नवीन बात धारिये।
उमरि बरष पाँच मानि कै अकाल आँच माता वन छोड़ि गयी विपति विचारिये॥
कील्ह और अगर ताहि डगर दरश दियो लियो यों अनाथ जानि पूछी सो उचारिये।
बड़े सिद्ध जल लै कमण्डलु सों सींचे नैन चैन भयो खुले चख जोरी को निहारिये॥ १२॥

श्रीनाभाजीका जन्म प्रशंसनीय हनुमान-वंशमें हुआ था। आश्चर्यजनक एक नयी बात यह जानिये कि ये जन्मसे ही नेत्रहीन थे। जब इनकी आयु पाँच वर्षकी हुई, उसी समय अकालके दुःखसे दुःखित माता इन्हें वनमें छोड़ गयी। माता और पुत्र दोनोंके लिये यह कितनी बड़ी विपत्ति थी। इसे आपलोग सोचिये। दैवयोगसे श्रीकील्हदेवजी और श्रीअग्रदेवजी—दोनों महापुरुष उसी मार्गसे दर्शन देते हुए निकले। बालक नाभाजीको अनाथ जानकर जो कुछ दोनोंने पूछा, उसका उन्होंने उत्तर दिया। वे बड़े भारी सिद्ध सन्त थे। उन्होंने अपने कमण्डलुसे जल लेकर नाभाजीके नेत्रोंपर छिड़क दिया। सन्तोंकी कृपासे नाभाजीके नेत्र खुल गये और सामने दोनों सन्तोंको उपस्थित देखकर इन्हें परम आनन्द हुआ॥ १२॥

पाँय परि आँसू आये कृपा करि संग लाये कील्ह आज्ञा पाइ मन्त्र अगर सुनायो है।
गलते प्रगट साधु सेवा सो विराजमान जानि अनुमानि ताही टहल लगायो है॥
चरण प्रछालि सन्त, सीथ सों अनन्त प्रीति जानी रस रीति ताते हृदै रंग छायो है।
भई बढ़वारि ताकौ पावै कौन पारावार जैसो भक्तिरूप सो अनूप गिरा गायो है॥ १३॥

दोनों सिद्ध महापुरुषोंके दर्शनकर नाभाजी उनके चरणोंमें पड़ गये। उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये। दोनों सन्त कृपा करके बालक नाभाजीको अपने साथ लाये। श्रीकील्हदेवजीकी आज्ञा पाकर श्रीअग्रदेवजीने इन्हें राममन्त्रका उपदेश दिया और 'नारायणदास' यह नाम रखा। गलता आश्रम (जयपुर)-में साधुसेवा प्रकट प्रसिद्ध थी। वहाँ सर्वदा सन्त-समूह विराजमान रहता था। श्रीअग्रदेवजीने सन्तसेवाके महत्त्वको जानकर और सन्तसेवासे ही यह समर्थ होकर जीवोंका कल्याण करनेवाला बनेगा—यह अनुमानकर नाभाजीको सन्तोंकी सेवामें लगा दिया। सन्तोंके चरणोदक तथा उनके सीथ-प्रसादका सेवन करनेसे श्रीनाभाजीका सन्तोंमें अपार प्रेम हो गया। इन्होंने भक्तिरसकी रीतियाँ जान लीं। इससे इनके हृदयमें अद्भुत प्रेमानन्द छा गया। हृदयमें भक्त-भगवान्‌के प्रेमकी ऐसी अभिवृद्धि हुई कि जिसका ओर-छोर भला कौन पा सकता है! इस प्रकार जैसे श्रीनाभाजी मूर्तिमान् भक्तिके स्वरूप हुए, वैसे ही सुन्दर वाणीसे इन्होंने भक्तमालमें भक्तोंके चरित्रोंको गाया है॥ १३॥

भक्तमालका प्रारम्भ

चौबीस अवतारोंकी कथा

जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि-बावन।
परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जग पावन॥
बुद्ध कलक्की ब्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर।
जग्य रिषभ हयग्रीव धुरुव बरदैन धन्वंतर॥
बद्रीपति दत कपिलदेव सनकादिक करुना करौ।
चौबीस रूप लीला रुचिर (श्री) अग्रदास उर पद धरौ॥ ५॥*

मंगलमय मीन, वाराह, कच्छप, नरसिंह तथा वामन आदि भगवान्‌के चौबीस अवतारोंकी जय हो, जय हो, इनका मंगल हो, हम इन्हें नमस्कार करते हैं। परशुराम, रघुवीर श्रीराम एवं श्रीकृष्ण आदि सभी अवतारोंकी पवित्र कीर्ति संसारको पवित्र करनेवाली है। बुद्ध, कल्कि, व्यास, पृथु, हरि, हंस, मन्वन्तर, यज्ञ, ऋषभ, हयग्रीव, ध्रुववरदायी श्रीहरि, धन्वन्तरि, नर-नारायण, दत्तात्रेय, कपिलदेव तथा सनक-सनन्दन-सनातन और सनत्कुमार सभी मुझ दासपर कृपा करें। चौबीसों अवतारोंके रूप एवं उनकी लीलाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। इन अवतारोंके समेत गुरुदेव श्रीअग्रदासजी महाराज मेरे हृदयमें अपने श्रीचरण स्थापित करें। (अथवा सभी अवतार मुझ अग्रदासके हृदयमें निज पदकमल रखें)॥ ५॥

श्रीप्रियादासकृत भक्तिरसबोधिनी टीका

जिते अवतार सुखसागर न पारावार करैं विस्तार लीला जीवन उधार कौं।
जाहि रूप माँझ मन लागै जाको, पागै तहीं, जागै हिय भाव वही, पावै कौन पार कौं॥
सब ही हैं नित्त ध्यान करत प्रकाशैं चित्त, जैसे रंक पावैं वित्त, जो पै जानै सार कौं।
केशनि कुटिलताई, ऐसे मीन सुखदाई, अगर सुरीति भाई, बसौ उर हार कौं॥ १४॥

भक्तवत्सल भगवान्‌के जितने भी अवतार हैं, सभी शाश्वत सुखके समुद्र हैं, उनके नाम, रूप, लीला आदिका ओर-छोर नहीं है। जीवोंका उद्धार करनेके लिये अवतार लेकर भगवान् लीलाओंका विस्तार करते हैं। जिस भक्तका मन भगवान्‌के जिस रूपमें लग जाता है, वह उसी रूपमें पग (रम) जाता है और उसमें उसी रूपसे सम्बन्धित प्रेम-भाव जग जाता है। भगवान्‌के सभी रूप अनन्त सुखके सागर हैं, अतः प्रेमभावकी तरंगोंका आर-पार भला कौन पा सकता है! सभी अवतार नित्य हैं और ध्यान करते ही हृदयको प्रेमानन्दसे प्रकाशित कर देते हैं। तब वह भक्त ऐसा सुखी हो जाता है, जैसे दरिद्र धन पा गया हो; पर इस प्रकारका दुर्लभ अनुभव तभी होता है, जब वह गम्भीर रहस्यको समझे। जिस प्रकार केशोंकी कुटिलता दूषण न होकर भूषण है, उसी प्रकार मीन, वाराह आदि भगवान्‌के अवतार भी भक्तोंको सुख देनेवाले हैं। सभी अवतार नित्य एवं पूर्ण हैं, श्रीअग्रदेवजीकी यह सुन्दर मान्यताकी रीति मुझे बहुत अच्छी लगी। चौबीस अवतारोंकी यह माला मेरे हृदयमें हारकी तरह बसे॥ १४॥

---

* मूलतः यह छप्पय श्रीनाभादासजीद्वारा रचित पहला छप्पय है। प्रारम्भमें मंगलाचरणके दोहोंमें एकसे चारतक संख्या दी गयी है, उस आधारपर यहाँ पाँचवीं संख्या दी गयी है।

भगवान्‌के चौबीस अवतारोंकी कथा

अचिन्त्य परमेश्वरकी अतर्क्य लीलासे त्रिगुणात्मक प्रकृतिद्वारा जब सृष्टि-प्रवाह होता है तो उस समय रजोगुणसे प्रेरित वे ही परब्रह्म परमात्मा सगुण होकर अवतार ग्रहण करते हैं। वस्तुतः यह जगत् परमात्माका लीला-विलास है, लीलारमणका आत्माभिरमण है, इसलिये भगवान् अपनी लीलाको चिन्मय बनानेके लिये अपने ही द्वारा निर्मित जगत्‌में अन्तर्यामीरूपसे स्वयं प्रविष्ट भी हो जाते हैं **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।'** वे परम प्रभु अजायमान होते हुए भी बहुत रूपोंमें लीला करते हैं **'अजायमानो बहुधा विजायते।'** उनकी यह लीला उनके अपने आनन्द-विलासके लिये होती है, जिसके फलस्वरूप भक्तोंकी कामनाएँ भी पूर्ण हो जाती हैं। भगवान्‌का अपने नित्य धामसे पृथ्वीपर लीला-अवतरण ही 'अवतार' कहा जाता है। कल्पभेदसे भगवान्‌ने अनेक अवतार धारणकर अपने लीला-चरितसे सन्तजन-परित्राण, दुष्टदलन और धर्मसंस्थापनके कार्य किये हैं। उनके अनन्त अवतार हैं, अनन्त चरित्र हैं और अनन्त लीला-कथाएँ हैं। यहाँ उनमेंसे चौबीस प्रमुख अवतारोंका संक्षिप्त निदर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) मत्स्यावतारकी कथा—(१) ब्रह्माजीके सोनेका जब समय आ गया और उन्हें नींद आने लगी, उस समय वेद उनके मुखसे निकल पड़े और उनके पास ही रहनेवाले हयग्रीव नामक दैत्यने उन्हें चुरा लिया। ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय होनेसे सारे लोक समुद्रमें डूब गये। श्रीहरिने हयग्रीवकी चेष्टा जान ली और वेदोंका उद्धार करनेके लिये मत्स्यावतार ग्रहण किया। द्रविड़ देशके राजर्षि सत्यव्रत बड़े भगवत्परायण थे। वे मलयपर्वतके एक शिखरपर केवल जल पीकर तपस्या कर रहे थे। ये ही वर्तमान महाकल्पमें वैवस्वत मनु हुए। एक दिन कृतमाला नदीमें तर्पण करते समय उनकी अंजलीमें एक छोटी-सी मछली आ गयी, उन्होंने उसे जलके साथ फिर नदीमें छोड़ दिया। उसने बड़ी प्रार्थना की कि मुझे जलजन्तु खा लेंगे, मेरी रक्षा कीजिये। राजाने उसे जलपात्रमें डाल लिया। वह इतनी बढ़ी कि कमण्डलुमें स्थान न रहा, तब राजाने उसे एक बड़े मटकेमें रखा दिया। दो घड़ीमें वह तीन हाथकी हो गयी तब उसे एक बड़े सरोवरमें रख दिया। थोड़ी ही देरमें उसने महामत्स्यका आकार धारण किया। जिस किसी जलाशयमें रखते, उसीसे वह बड़ी हो जाती। तब राजाने उसे समुद्रमें छोड़ दिया, उसने बड़ी करुणासे कहा—राजन्! आप मुझको इसमें न छोड़ें मेरी रक्षा करें। तब उन्होंने प्रश्न किया 'मत्स्यरूप धारण करके मुझको मोहित करनेवाले आप कौन हैं? आपने एक ही दिनमें ४०० कोसके विस्तारका सरोवर घेर लिया। आप अवश्य ही सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी अविनाशी श्रीहरि हैं। आपने यह रूप किस उद्देश्यसे ग्रहण किया है?' तब भगवान्‌ने कहा—आजसे सातवें दिन तीनों लोक प्रलयकालीन समुद्रमें डूब जायँगे। तब मेरी प्रेरणासे एक बड़ी भारी नाव तुम्हारे पास आयेगी। उस समय तुम समस्त प्राणियोंके सूक्ष्म शरीरोंको लेकर सप्तर्षियोंके समेत उसपर चढ़ जाना और समस्त औषधियों और बीजोंको साथ रख लेना। जबतक ब्रह्माकी रात्रि रहेगी, तबतक मैं तुम्हारी नौकाको लिये समुद्रमें विहार करूँगा और तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दूँगा। यह कहकर मत्स्यभगवान् अन्तर्धान हो गये।

प्रलयकालमें वैसा ही हुआ, जैसा भगवान्‌ने कहा था। मत्स्यभगवान् प्रकट हुए। उनका शरीर सोनेके समान देदीप्यमान था और शरीरका विस्तार चार लाख कोसका था। शरीरमें एक बड़ा भारी सींग भी था। वह नाव वासुकी नागसे सींगमें बाँध दी गयी। सत्यव्रतजीने भगवान्‌की स्तुति की। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने स्वरूपका सम्पूर्ण परम रहस्य और ब्रह्म-तत्त्वका उपदेश किया, जो मत्स्यपुराणमें है। ब्रह्माकी नींद टूटनेपर भगवान्‌ने हयग्रीवको मारकर श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं। (श्रीमद्भागवत)

(२) समुद्रका एक पुत्र शंख था। इसने देवताओंको परास्त करके उनको स्वर्गसे निकाल दिया, सब लोकपालोंके अधिकार छीन लिये। देवता मेरुगिरिकी कन्दराओंमें जा छिपे, शत्रुके अधीन न हुए। तब दैत्यने

सोचा कि देवता वेदमन्त्रोंके बलसे प्रबल प्रतीत होते हैं। अतः मैं वेदोंका अपहरण करूँगा। ऐसा निश्चय करके वह वेदोंको हर लाया। ब्रह्माजी कार्तिककी प्रबोधिनी एकादशीको भगवान्‌की शरण गये। भगवान्‌ने आश्वासन दिया और मछलीके समान रूप धारण करके आकाशसे वे विन्ध्यपर्वतनिवासी कश्यपमुनिकी अंजलिमें गिरे। मुनिने करुणावश उसे क्रमशः कमण्डलु, कूप, सर, सरिता आदि अनेक स्थानोंमें रखते हुए अन्तमें उसे समुद्रमें डाल दिया। वहाँ भी वह बढ़कर विशालकाय हो गया। तदनन्तर उन मत्स्यरूपधारी भगवान्‌ने शंखासुरका वध किया और विष्णुरूपमें उसे हाथमें लिये वे बदरीवनमें गये। वहाँ सम्पूर्ण ऋषियोंको बुलाकर आदेश दिया कि 'जलके भीतर बिखरे हुए वेदोंकी खोज करो और रहस्यसहित उनका पता लगाकर शीघ्र ही ले आओ।' तब तेज और बलसे सम्पन्न समस्त मुनियोंने यज्ञ और बीजसहित वेदमन्त्रोंका उद्धार किया। जिस वेदके जितने मन्त्रोंको जिस ऋषिने उपलब्ध किया, वही उतने भागका तबसे ऋषि माना जाने लगा। ब्रह्मा समेत सब ऋषियोंने आकर प्राप्त किये हुए वेदोंको भगवान्‌को अर्पण कर दिया। (पद्मपुराण)

(३) दितिके मकर, हयग्रीव, महाबलशाली हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, जम्भ और मय आदि पुत्र हुए, मकरने ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीको मोहित करके उनसे सम्पूर्ण वेद ले लिये। इस प्रकार श्रुतियोंका अपहरण करके वह महासागरमें घुस गया। फिर तो सारा संसार धर्मशून्य हो गया। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे भगवान् मत्स्य-रूप धारण करके महासागरमें प्रविष्ट हुए और मकर दैत्यको थूथुनके अग्रभागसे विदीर्ण करके उन्होंने मार डाला और अंग-उपांगोंसहित सम्पूर्ण वेदोंको लाकर ब्रह्माजीको समर्पित कर दिया। (पद्मपुराण)

(२) श्रीवराह-अवतारकी कथा—ब्रह्मासे सृष्टिक्रम प्रारम्भ करनेकी आज्ञा पाये हुए स्वायम्भुव मनुने पृथ्वीको प्रलयके एकार्णवमें डूबी हुई देखकर उनसे प्रार्थना की कि आप मेरे और मेरी प्रजाके रहनेके लिये पृथ्वीके उद्धारका प्रयत्न करें, जिससे मैं आपकी आज्ञाका पालन कर सकूँ। ब्रह्माजी इस विचारमें पड़कर कि पृथ्वी तो रसातलमें चली गयी है, इसे कैसे निकाला जाय, वे सर्वशक्तिमान् श्रीहरिकी शरण गये। उसी समय विचारमग्न ब्रह्माजीकी नाकसे अंगुष्ठप्रमाण एक वराह बाहर निकल पड़ा और क्षणभरमें पर्वताकार विशालरूप गजेन्द्र-सरीखा होकर गर्जन करने लगा। शूकररूप भगवान् पहले तो बड़े वेगसे आकाशमें उछले। उनका शरीर बड़ा कठोर था, त्वचापर कड़े-कड़े बाल थे, सफेद दाढ़ें थीं, उनके नेत्रोंसे तेज निकल रहा था। उनकी दाढ़ें भी अति कर्कश थीं। फिर अपने वज्रमय पर्वतके समान कठोर-कलेवरसे उन्होंने जलमें प्रवेश किया। बाणोंके समान पैने खुरोंसे जलको चीरते हुए वे जलके पार पहुँचे। रसातलमें समस्त जीवोंकी आश्रयभूता पृथ्वीको उन्होंने वहाँ देखा। पृथ्वीको वे दाढ़ोंपर लेकर बाहर आये। जलसे बाहर निकलते समय उनके मार्गमें विघ्न डालनेके लिये महापराक्रमी हिरण्याक्षने जलके भीतर ही उनपर गदासे प्रहार करते हुए आक्रमण कर दिया। भगवान्‌ने उसे लीलापूर्वक ही मार डाला। श्वेत दाढ़ोंपर पृथ्वीको धारण किये, जलसे बाहर निकले हुए तमाल वृक्षके समान नीलवर्ण वराहभगवान्‌को देखकर ब्रह्मादिकको निश्चय हो गया कि ये भगवान् ही हैं। वे सब हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

(३) कमठ (कच्छप)-अवतारकी कथा—जब दुर्वासाजीके शापसे इन्द्रसहित तीनों लोक श्रीरहित हो गये। तब इन्द्रादि ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजी सबको लेकर अजित भगवान्‌के धामको गये और उनकी स्तुति की। भगवान्‌ने उनको यह युक्ति बतायी कि दैत्य और दानवोंके साथ सन्धि करके मिल-जुलकर क्षीर-सिन्धुको मथनेका उपाय करो। मन्दराचलको मथानी और वासुकी नागको नेती बनाओ। मन्थन करनेपर पहले कालकूट निकलेगा, उसका भय न करना और फिर अनेक रत्न निकलेंगे, उनका लोभ न करना। अन्तमें अमृत निकलेगा, उसे मैं युक्तिसे तुम लोगोंको पिला दूँगा। देवताओंने जाकर दैत्यराज बलिमहाराजसे सन्धि कर ली। अब देवता और दैत्य मन्दराचलको उखाड़कर ले चले, परंतु थक गये, तब भगवान् प्रकट होकर

उसे उठाकर गरुड़पर रखकर सिन्धुतटपर पहुँचे। वासुकी अमृतके लोभसे नेती बने। जब समुद्र-मन्थन होने लगा, तब बड़े-बड़े देवता और असुरोंके पकड़े रहनेपर भी अपने भारकी अधिकता और नीचे कोई आधार न होनेके कारण मन्दराचल समुद्रमें डूबने लगा। इस प्रकार अपना सब करा-कराया मिट्टीमें मिलते देखकर उन सबोंका मन टूट गया। उस समय भगवान्‌ने यह देखकर कि यह सब विघ्नराज (गणेशजी)-की करतूत है, उन्होंने हँसकर कहा—सब कार्योंके प्रारम्भमें गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। सो तो हम लोगोंने बिल्कुल भुला दिया। बिना उनकी पूजाके कार्य सिद्ध होता नहीं दीखता। अब उन्हींकी पूजा करनी चाहिये। लीलामय भगवान्‌की लीला है। वे स्वयं सर्वसमर्थ हैं, परंतु कार्यारम्भमें गणेशजीकी अग्रपूजाकी मर्यादा जो बाँध रखी है, उसका पालन करनेके लिये जब देवताओं और दैत्योंको यह परामर्श दिया तो सभी लोग उधर श्रीगणेशजीकी पूजामें लगे, इधर भगवान्‌ने तुरंत अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छपका रूप धारणकर समुद्रमें प्रवेश करके अपनी एक लाख योजनवाली पीठपर मन्दराचलको ऊपर उठा लिया। तब देवता और दैत्य फिर बड़े वेगसे समुद्रको मथने लगे।

भगवान् कच्छपरूपसे मन्दराचलको धारण किये हुए थे, विष्णुरूपसे देवताओंके साथ-साथ रहे थे। एक तीसरा रूप भी धारण करके मन्दराचलको अपने हाथोंसे दबाये हुए थे कि कहीं उछल न जाय। मथते-मथते बहुत देर हो गयी, परंतु अमृत न निकला। अब भगवान्‌ने सहस्रबाहु होकर स्वयं ही दोनों ओरसे मथना आरम्भ किया। उस समय भगवान्‌की बड़ी विलक्षण शोभा थी। ब्रह्मा, शिव, सनकादि जय-जयकार करते हुए आकाश-मण्डलसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे। उन लोगोंकी ध्वनिमें ध्वनि मिलाकर समुद्र भी भगवान्‌का जय-जयकार कर रहा था। समुद्रसे सर्वप्रथम 'हलाहल कालकूट विष' प्रकट हुआ, उससे त्रैलोक्य जलने लगा तो उसे देवाधिदेव महादेवने ग्रहण किया। फिर और भी रत्न निकले। उनमेंसे 'कामधेनु' को ऋषियोंने स्वीकार किया। 'उच्चैःश्रवा' नामक अति सुन्दर बलिष्ठ अश्वको दैत्योंने लिया। बादमें 'ऐरावत' नामक महान् हाथी निकला, वह देवताओंके राजा इन्द्रको मिला। 'कौस्तुभमणि' के प्रति सभी लालायित थे, उसे भगवान्‌ने अपने कण्ठमें धारण कर लिया। 'कल्पवृक्ष' बिना किसीकी अपेक्षा किये स्वर्गमें चला गया। 'अप्सराएँ' भी स्वेच्छासे स्वर्गको ही प्रस्थान कर गयीं। 'भगवती लक्ष्मी' ने, अपनी ओरसे उदासीन रहनेपर भी सर्वगुण-सम्पन्न भगवान् विष्णुको वरण किया। 'वारुणी देवी' को दैत्योंने बड़े चावसे लिया। 'धनुष' तो किसीसे उठा ही नहीं। तब भगवान् विष्णुने उसे धारण किया। 'चन्द्रमा' को अनन्त आकाश विचरनेके लिये दिया गया। 'दिव्यशङ्ख' को भगवान्‌ने स्वीकार किया। अन्तमें 'अमृत-कलश' हाथमें लिये हुए प्रकट हुए धन्वन्तरिजी महाराज। दैत्योंने उनसे अमृत-कलश छीन लिया, देवता उदास हो गये। तब भगवान्‌ने मोहिनी-स्वरूप धारणकर दैत्योंको व्यामोहितकर अमृत-कलश उनसे लेकर अमृत देवताओंको पिला दिया। देवताओंकी पंक्तिमें सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें एक राहु नामक दैत्य वेष बदलकर आ बैठा था। उसे अमृत पिलाया ही जा रहा था कि चन्द्रमा और सूर्यने बतला दिया और तुरंत ही भगवान्‌के चक्रने उसका सिर धड़से अलग कर दिया। परंतु कुछ अमृत उसे मिल चुका था, अतः सिर कटनेपर भी मरा नहीं। इसलिये उसे ग्रहोंमें स्थान दिया गया। राहु अब भी सूर्य-चन्द्रमासे बदला लेनेके लिये उनके पर्व अमावस्या और पूर्णिमापर आक्रमण करता है, जिसे ग्रहण कहते हैं। देवताओंने अमृत पी ही लिया था। भगवान्‌का आश्रय था ही। अतः अबकी बार संग्राममें विजय देवताओंकी हुई।

(४) श्रीनृसिंह-अवतारकी कथा—जब वराहभगवान्‌ने हिरण्याक्षका वध कर डाला था, तब उसकी माता दिति, उसकी पत्नी भानुमती, उसका भाई हिरण्यकशिपु और समस्त परिवार बड़ा दुखी था। दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुने सबको समझा-बुझाकर शान्त किया, परंतु स्वयं शान्त नहीं हुआ। हृदयमें प्रतिशोधकी ज्वाला

धधकने लगी। फिर तो उसने निश्चय किया कि तपस्या करके ऐसी शक्ति प्राप्त की जाय कि त्रिलोकीका राज्य निष्कण्टक हो जाय और हम अमर हो जायँ। निश्चय कर लेनेपर हिरण्यकशिपुने मन्दराचलकी घाटीमें जाकर ऐसा घोर तप किया कि जिससे देवलोक भी तप्त हो गये। देवताओंकी प्रार्थनापर ब्रह्माजीने जाकर उससे अमरत्व छोड़कर अन्य कोई भी मनचाहा वर माँगनेको कहा। उसने कहा कि मैं चाहता हूँ कि आपके बनाये हुए किसी प्राणीसे मेरी मृत्यु न हो। भीतर-बाहर, दिनमें-रातमें, आपके बनाये हुए प्राणियोंके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे, अस्त्र-शस्त्रसे, पृथ्वी या आकाशमें कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। युद्धमें कोई भी मेरा सामना न कर सके। मैं समस्त प्राणियोंका एकछत्र सम्राट् बनूँ। इन्द्रादि समस्त लोकपालोंमें जैसी आपकी महिमा है, वैसी ही मेरी हो। तपस्वियों और योगियों, योगेश्वरोंको जो अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त है, वही मुझे भी दीजिये। ब्रह्माजीने 'एवमस्तु' कहकर उसके माँगे वर उसको दिये। वह अपनी चतुराईपर बड़ा ही प्रसन्न हुआ कि मैंने ब्रह्माको भी ठग लिया। उनके न चाहनेपर भी मैंने युक्तिसे अमरत्वका वरदान ले ही लिया। यह जीवका स्वभाव है, वह अपनी चतुराईसे चतुराननकी कौन कहे, भगवान्‌को भी धोखा देनेका प्रयत्न करता है। वैसे ही हिरण्यकशिपुने भी अपनी समझसे मृत्युका दरवाजा बन्द ही कर लिया था, किंतु भगवान्‌ने जब चाहा तो खोल ही लिया।

वर प्राप्तकर उसने सम्पूर्ण दिशाओं, तीनों लोकों तथा देवता, असुर, नर, गन्धर्व, गरुड, सर्प, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृगणोंके अधिपति, मनु, यक्ष, राक्षस, पिशाचपति, भूत और प्रेतोंके नायक तथा सम्पूर्ण जीवोंके स्वामियोंको जीतकर अपने वशीभूत कर लिया। इस प्रकार उस विश्वजित् असुरने अपने पराक्रमसे सम्पूर्ण लोकपालोंके स्थान छीन लिये, स्वयं इन्द्रभवनमें रहने लगा। उसने दैत्योंको आज्ञा दी कि आजकल ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी बहुत बढ़ती हो गयी है। जो लोग तपस्या, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय और दानादि शुभ-कर्म कर रहे हैं, उन सबोंको मार डालो; क्योंकि विष्णुकी जड़ है द्विजातियोंका कर्म-धर्म और वही धर्मका परम आश्रय है। दैत्योंने जाकर वैसा ही किया। परंतु जहाँ त्रैलोक्यमें इस प्रकार धर्मका नाश किया जा रहा था, वहाँ हिरण्यकशिपुके पुत्रोंमें प्रह्लादजी जन्मसे ही भगवद्भक्त थे। पाँच वर्षकी अवस्थामें वे अपने पिताको भगवद्भक्तिका पाठ सुना रहे थे। पुत्रको अपने शत्रु विष्णुका भक्त जानकर उसने यह निश्चय कर लिया कि यह अपना शत्रु है, जो पुत्ररूपसे प्रकट हुआ है। अतः उसे मार डालनेकी आज्ञा दी, पर दैत्योंके सब प्रयोग व्यर्थ हुए। तब हिरण्यकशिपुको बड़ी चिन्ता हुई। उसने उन्हें बड़े-बड़े मतवाले हाथियोंसे कुचलवाया। विषधर सर्पोंसे डँसवाया, कृत्या राक्षसी उत्पन्न करायी कि प्रह्लादको खा ले। पहाड़ोंपरसे नीचे गिरवाया। शंबरासुरसे अनेकों प्रकारकी मायाका प्रयोग कराया। विष दिलाया। दहकती आगमें प्रवेश कराया, समुद्रमें डुबाया इत्यादि अनेक उपाय मार डालनेके किये, पर उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ। गुरुपुत्रोंकी सलाहसे वे वरुणपाशसे बाँधकर रखे जाने लगे कि कहीं भाग न जायँ और गुरुपुत्र इन्हें अर्थ, धर्म और कामकी शिक्षा देने लगे। छुट्टीके समय प्रह्लादजीने समवयस्क असुर-बालकोंको भगवद्भक्तिका स्वरूप बताया, जिसे सुनकर सब सहपाठी असुर बालक भगवन्निष्ठ हो गये। यह देखकर पुरोहितने जाकर सब हाल हिरण्यकशिपुसे कहा। सुनते ही उसका शरीर क्रोधके मारे थर-थर काँपने लगा और उसने प्रह्लादजीको अपने हाथसे मार डालनेका निश्चय किया। उन्हें बुलाकर बहुत डाँटा, झिड़का और पूछा कि तू किसके बलपर मेरी आज्ञाके विरुद्ध काम किया करता है?

प्रह्लादजीने उसे सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान्‌के स्वरूपका उपदेश दिया, वह क्रोधसे भरकर बोला—देखूँ वह तेरा जगदीश्वर कहाँ है? अच्छा, क्या कहा—वह सर्वत्र है तो इस खम्भेमें क्यों नहीं दीखता? अच्छा, तुझे इस खम्भेमें भी दीखता है। मैं अभी तेरा सिर अलग करता हूँ, देखता हूँ, तेरा वह हरि तेरी

कैसे रक्षा करता है? वे मेरे सामने आयें तो सही। इत्यादि, कहते-कहते जब वह क्रोधको सँभाल न सका तब सिंहासनपरसे खड्ग लिये कूद पड़ा और प्रह्लादजीके यह कहते ही कि हाँ, वह खम्भेमें भी है, उसने बड़े जोरसे खम्भेको एक घूँसा मारा। उसी समय खम्भेसे बड़ा भारी शब्द हुआ। घूँसा मारकर वह प्रह्लादजीको मारनेके लिये झपटा था परंतु उस अपूर्व घोर शब्दको सुनकर वह घबड़ाकर देखने लगा कि शब्द करनेवाला कौन? इतनेमें उसने खम्भेसे निकले हुए एक अद्भुत प्राणीको देखा। वह सोचने लगा—अहो, यह न तो मनुष्य है न सिंह। फिर यह नृसिंहरूपमें कौन अलौकिक जीव है! वह इस उधेड़-बुनमें लगा ही हुआ था कि उसके बिल्कुल सामने नृसिंहभगवान् खड़े हो गये।

भगवान् उससे बड़ी देरतक खेलवाड़ करते रहे, अन्तमें सन्ध्या समय उन्होंने बड़े उच्च स्वरसे प्रचण्ड भयंकर अट्टहास किया, जिससे उसकी आँखें बन्द हो गयीं। उसी समय झपटकर भगवान्ने उसे पकड़कर राजसभा द्वारकी ड्योढ़ीपर ले जाकर अपनी जंघाओंपर गिराकर अपने नखोंसे उसके पेटको चीरकर उसे मार डाला।

(५) श्रीवामनावतारकी कथा—भगवान्की कृपासे ही देवताओंकी विजय हुई। स्वर्गके सिंहासनपर इन्द्रका अभिषेक हुआ। परंतु अपनी विजयके गर्वमें देवता लोग भगवान्को भूल गये, विषयपरायण हो गये। इधर हारे हुए दैत्य बड़ी सावधानीसे अपना बल बढ़ाने लगे। वे गुरु शुक्राचार्यजीके साथ-साथ समस्त भृगुवंशी ब्राह्मणोंकी सेवा करने लगे, जिससे प्रभावशाली भृगुवंशी अत्यन्त प्रसन्न हुए और दैत्यराज बलिसे उन्होंने विश्वजित् यज्ञ कराया। ब्राह्मणोंकी कृपासे यज्ञमें स्वयं अग्निदेवने प्रकट होकर रथ-घोड़े आदि दिये और अपना आशीर्वाद दिया। शुक्राचार्यजीने एक दिव्य शंख और प्रह्लादजीने एक दिव्य माला दी। इस तरह सुसज्जित हो सेनासहित उन्होंने जाकर अमरावतीको घेर लिया। देवगुरु बृहस्पतिके आदेशानुसार देवताओंसहित इन्द्रने स्वर्गको छोड़ दिया और कहीं जा छिपे। विश्वविजयी हो जानेपर भृगुवंशियोंने बलिसे सौ अश्वमेध यज्ञ कराये। इस तरह प्राप्त समृद्ध राज्यलक्ष्मीका उपभोग वे बड़ी उदारतासे करने लगे।

अपने पुत्रोंका ऐश्वर्य-राज्यादि छिन जानेसे माता अदिति बहुत दुखी हुईं, अपने पति कश्यपजीके उपदेशसे उन्होंने पयोव्रत किया। भगवान्ने प्रकट होकर कहा कि ब्राह्मण और ईश्वर बलिके अनुकूल हैं। इसलिये वे जीते नहीं जा सकते। मैं अपने अंशरूपसे तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारे सन्तानकी रक्षा करूँगा। इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। फिर भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको मध्याह्नकालमें अभिजित् मुहूर्तमें भगवान् विष्णु महर्षि कश्यपके अंशद्वारा अदितिके गर्भसे प्रकट हुए और कश्यप-अदितिके देखते-देखते उसी शरीरसे वामन ब्रह्मचारीका रूप धारण कर लिया। ठीक वैसे ही जैसे कोई नट अपना भेष बदल ले। भगवान्को वामन ब्रह्मचारीके रूपमें देखकर महर्षियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उन लोगोंने कश्यप प्रजापतिको आगे करके उनके जातकर्म आदि संस्कार करवाये। जब उनका उपनयन-संस्कार होने लगा तब सूर्यने उन्हें गायत्रीका उपदेश दिया। बृहस्पतिने यज्ञोपवीत और कश्यपने मेखला दी। पृथ्वीने कृष्णमृग चर्म, वनस्पतियोंके स्वामी चन्द्रमाने दण्ड, माता अदितिने कौपीन और उत्तरीयवस्त्र, आकाशके अभिमानी देवताने छत्र, ब्रह्माने कमण्डलु, सप्तर्षियोंने कुश और सरस्वतीने रुद्राक्षकी माला समर्पित की। कुबेरने भिक्षापात्र और साक्षात् जगन्माता अन्नपूर्णाने भिक्षा दी। इस प्रकार उनकी ब्रह्मचर्य-दीक्षा पूर्ण हुई। उसी समय भगवान्ने सुना कि सब प्रकारकी सामग्रियोंसे सम्पन्न यशस्वी बलि भृगुवंशी ब्राह्मणोंके आदेशानुसार बहुत-से अश्वमेधयज्ञ कर रहे हैं, तब उन्होंने वहाँके लिये यात्रा की।

राजा बलि नर्मदा नदीके उत्तर तटपर भृगुकच्छ नामक क्षेत्रमें भृगुवंशियोंके आदेशानुसार एक श्रेष्ठ यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। ठीक उसी समय हाथमें छत्र, दण्ड और जलसे भरा कमण्डलु लिये वामन

भगवान्ने अश्वमेधयज्ञके मण्डपमें प्रवेश किया। वे कमरमें मूँजकी मेखला और गलेमें यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे, बगलमें मृगचर्म और जटा सिरपर थी। राजा बलिने स्वागत-वाणीसे उनका अभिनन्दन किया और चरणोंको पखारकर चरणतीर्थको मस्तकपर रखा। फिर बटुरूपधारी भगवान्से बोले—ब्राह्मणकुमार! ऐसा जान पड़ता है कि आप कुछ चाहते हैं। आप जो कुछ भी चाहते हैं, अवश्य ही वह सब आप मुझसे माँग लीजिये। भगवान्ने प्रसन्न होकर बलिका अभिनन्दन किया और कहा—राजन्! आपने जो कुछ कहा, वह धर्ममय होनेके साथ-साथ आपकी कुल-परम्पराके अनुरूप है। फिर यह कहकर उन्होंने बलिके पूर्वजोंका यशोगान किया—बलिके पिता विरोचनकी उदारता, पितामह प्रह्लादकी भक्ति-निष्ठा, प्रपितामह हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्षके अमित पराक्रमकी प्रशंसा की और बोले—मैं केवल अपने डगसे तीन डग पृथ्वी चाहता हूँ। बलिजी हँसने लगे—***'जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥'*** वही हाल आपका है। भगवान्ने कहा—नहीं, कम माँगनेमें दरिद्रता हेतु नहीं है। सन्तोष हेतु है। यथा—

गो धन गज धन बाजि धन और रतन धन खान।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥

बलिने कहा—अच्छा, तीन पग लेना है तो मेरे दैत्योंके पगसे लीजिये। देखिये एक-एक योजनके इनके पाँव हैं। भगवान् भी पूरे हठी हैं, बोले—नहीं मुझे तो अपने ही पाँवसे नाप लेने हैं; क्योंकि धनका उतना ही संग्रह करना चाहिये, जितनेकी आवश्यकता हो। जो ब्राह्मण स्वयंप्राप्त वस्तुसे ही सन्तोष कर लेता है, उसके तेजकी वृद्धि होती है, नहीं तो पतन हो जाता है। शुक्राचार्यजीके बहुत समझानेपर भी कि ये बटुरूपधारी तुम्हारे शत्रु भगवान् विष्णु हैं, ये सब छीननेके लिये आये हैं। अपनी जीविका छिनती देख असत्य बोलकर उसकी रक्षा करना निन्दनीय नहीं है। राजाने असत्य बोलना—देनेको कहकर फिर नकार जाना स्वीकार न किया, तब शुक्राचार्यजीने बलिको राज्यभ्रष्ट होनेका शापतक दे दिया तो भी महात्मा बलि अपने निश्चयसे हटे नहीं और हाथमें जल लेकर तीन पग पृथ्वीका संकल्प कर दिया।

संकल्प होते ही भगवान्का वामनरूप बढ़ते-बढ़ते इतना बढ़ा कि भगवान्की इन्द्रियोंमें और शरीरमें सभी चराचर प्राणियोंका दर्शन होने लगा। सर्वात्मा भगवान्में यह सारा ब्रह्माण्ड देखकर सब दैत्य भयभीत हो गये। उन्होंने एक डगसे बलिकी सारी पृथ्वी नाप ली। शरीरसे नभ और भुजाओंसे सभी दिशाएँ घेर लीं। दूसरे पगसे स्वर्ग नाप लिया। तीसरा पग रखनेके लिये बलिकी कोई भी वस्तु न बची। भगवान्का दूसरा पग ही ऊपरको जाता हुआ महर्लोक, जनलोक और तपलोकसे भी ऊपर सत्यलोकमें पहुँच गया। श्रीब्रह्माजीने विश्वरूप भगवान्के ऊपर उठे हुए चरणका अर्घ्य-पाद्यसे पूजन और प्रक्षालन किया। ब्रह्माके कमण्डलुका वही जल विश्वरूपभगवान्के पद-प्रक्षालनसे पवित्र होनेके कारण गंगाजीके रूपमें परिणत हो गया।

बलिके सेनापतियोंने, यह जानकर कि यह भिक्षुक ब्रह्मचारी तो हम लोगोंका बैरी है, जो अपनेको छिपाकर देवताओंका काम करना चाहता है और राजा तो यज्ञमें दीक्षित होनेसे कुछ कहेंगे नहीं, वामन-भगवान्पर अस्त्र चलाया, पर भगवत्पार्षदोंने उन्हें खदेड़ा। बलिने दैत्योंको समझा-बुझाकर लड़ाई करनेसे रोक दिया। भगवान्का इशारा पाकर गरुड़ने वरुणपाशसे बलिको बाँध दिया। तत्पश्चात् भगवान् बलिसे बोले—दो पगमें तो मैंने तुम्हारी सब पृथ्वी और सब लोकोंको नाप लिया, तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी न होनेसे अब तुम नरक भोगोगे इत्यादि रीतिसे वामनजीने बहुत तिरस्कार किया, परंतु राजा बलि धैर्यसे विचलित न हुए। उन्होंने बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया, प्रभो! मैं आपसे एक बात पूछता हूँ। धन बड़ा है कि धनी? भगवान्ने कहा—चूँकि धन धनीके अधीन रहता है, इसलिये धनी धनसे बड़ा होता है। बलिजीने कहा—प्रभो! आपने मेरा धन तो दो पगमें नाप लिया है। रही एक पगकी बात, सो वह पग आप मेरे सिरपर रख दीजिये। यद्यपि

हूँ तो मैं दो पगसे भी अधिक, परंतु एक ही पगमें मैं आपके चरणोंमें आत्मसमर्पण करता हूँ। भगवान् बहुत प्रसन्न होकर ब्रह्माजीसे बोले—मैं जिसपर बहुत प्रसन्न होता हूँ, उसका धन छीन लिया करता हूँ।···मैंने इसका धन छीन लिया, राजपदसे अलग कर दिया, तरह-तरहके आक्षेप किये, शत्रुओंने इसे बाँध लिया, भाई-बन्धु छोड़कर चले गये, इतनी यातनाएँ इसे भोगनी पड़ीं—यहाँतक कि इसके गुरुदेवने भी इसे शाप दे दिया, परंतु इस दृढ़व्रतीने प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी। मैंने इससे छलभरी बातें कीं, मनमें छल रखकर धर्मोपदेश किया, परंतु इस सत्यवादीने अपना धर्म न छोड़ा!····। फिर राजा बलिको सुतललोकमें रहनेकी आज्ञा दी और अपूर्व वर दिये। राजा बलिके आप द्वारपाल बन गये। इस तरह भगवान् वामनने बलिसे स्वर्गका राज्य लेकर इन्द्रको देकर अदितिकी कामना पूर्ण की और स्वयं उपेन्द्र बनकर सारे जगत्का शासन करने लगे।

(६) श्रीपरशुरामावतारकी कथा—(वाल्मीकि-रामायणके अनुसार) साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र राजा कुशके चार पुत्रोंमेंसे कुशनाभ दूसरे पुत्र थे। राजा कुशनाभने पुत्रप्राप्तिके लिये पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसके फलस्वरूप गाधि नामक परम धर्मात्मा पुत्र हुआ। राजा गाधिके एक सत्यवती नामकी कन्या थी, जो महर्षि ऋचीकको ब्याही गयी थी। एकबार सत्यवती और सत्यवतीकी माताने ऋचीकजीके पास पुत्र-कामनासे जाकर उसके लिये प्रार्थना की। ऋचीकने दो चरु सत्यवतीको दिये और बता दिया कि यह तुम्हारे लिये है और यह तुम्हारी माँके लिये है, इनका तुम यथोचित उपयोग करना। यह कहकर वे स्नानको चले गये। उपयोग करनेके समय माताने कहा—बेटी! सभी लोग अपने ही लिये सबसे अधिक गुणवान् पुत्र चाहते हैं, अपनी पत्नीके भाईके गुणोंमें किसीकी विशेष रुचि नहीं होती। अतः तू अपना चरु मुझे दे दे और मेरा तू ले ले; क्योंकि मेरे पुत्रको तो सम्पूर्ण भूमण्डलका पालन करना होगा और ब्राह्मणकुमारोंको तो बल, वीर्य तथा सम्पत्ति आदिसे लेना-देना ही क्या है? ऐसा कहनेपर सत्यवतीने अपना चरु माताको दे दिया। जब ऋषिको यह बात ज्ञात हुई तब उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा कि तुमने यह बड़ा अनुचित किया। ऐसा हो जानेसे अब तुम्हारा पुत्र घोर योद्धा होगा और तुम्हारा भाई ब्रह्मवेत्ता होगा। सत्यवतीके बहुत प्रार्थना करनेपर कि मेरा पुत्र ऐसा न हो, उन्होंने कहा कि अच्छा, पुत्र तो वैसा न होगा किंतु पौत्र उस स्वभावका होगा। यही कारण है कि राजा गाधिकी स्त्रीने जो चरु खाया उसके प्रभावसे विश्वामित्रजी हुए, जो क्षत्रिय होते हुए भी तपस्वी और ब्रह्मर्षि हुए और श्रीऋचीकजीके पुत्र श्रीयमदग्निजी तो परम शान्त, दान्त ब्रह्मर्षि हुए परंतु यमदग्निपुत्र परशुराम बड़े ही घोर योद्धा हुए।

एकबार यमदग्नि ऋषिने अपनी स्त्री रेणुकाजीको नदीसे जल लानेको भेजा। वहाँ गन्धर्व-गन्धर्विणी विहार कर रहे थे। ये जल लेने गयीं तो उनका विहार देखने लगीं। इसमें उन्हें लौटनेमें देर हुई। ऋषिने देरीका कारण जान लिया और यह समझकर कि स्त्रीको पर-पुरुषकी रति देखना महापाप है, अपने पुत्रोंको बुलाकर (एक-एक करके) आज्ञा दी कि माताको मार डालो। परंतु मातृ-स्नेहवश सातों पुत्रोंने इस कामको करना अंगीकार न किया। तब आठवें पुत्र परशुरामको आज्ञा दी कि इन सब भाइयोंसहित माताका वध करो। इन्होंने तुरंत सबका सिर काट डाला। इसपर पिताने प्रसन्न होकर इनसे वर माँगनेको कहा। तब इन्होंने कहा कि मेरे सब भाई और माताजी जी उठें और इन्हें यह भी न मालूम हो कि मैंने इन्हें मारा था। हमको पापका स्पर्श न हो। युद्धमें कोई मेरी बराबरी न कर सके, मैं दीर्घकालतक जीवित रहूँ। महातपस्वी यमदग्निने परशुरामको सभी वर दिये।

माहिष्मती नगरीका राजा सहस्रार्जुन भगवान् दत्तात्रेयजीसे, युद्धमें कोई सामना न कर सके, युद्धके समय हजार भुजाएँ प्राप्त हो जायँ, सर्वत्र अव्याहत गति हो आदि वरदान प्राप्तकर उन्मत्त हो गया। वह रथ और वरके प्रभावसे देवता, यक्ष और ऋषि सभीको कुचले डालता था। उसके द्वारा सभी प्राणी पीड़ित हो

रहे थे। एकबार उसने केवल धनुष और बाणकी सहायतासे, अपने बलके घमण्डमें आकर समुद्रको आच्छादित कर दिया। तब समुद्रने प्रकट होकर उसके आगे मस्तक झुकाया और हाथ-जोड़कर कहा—वीरवर! बोलो, मैं तुम्हारी किस आज्ञाका पालन करूँ? उसने कहा—यदि कहीं मेरे समान धनुर्धर वीर मौजूद हो, जो युद्धमें मेरा मुकाबला कर सके तो उसका पता बताओ। फिर मैं तुझे छोड़कर चला जाऊँगा। तब समुद्रने कहा—महर्षि यमदग्निके पुत्र परशुराम युद्धमें तुम्हारा अच्छा सत्कार कर सकते हैं। तुम वहीं जाओ। यह सुनकर राजाने वहीं जानेका निश्चय किया। अपनी अक्षौहिणी सेनासहित राजा सहस्रार्जुन श्रीयमदग्नि ऋषिके आश्रमपर पहुँचे।

ऋषिने इनका यथोचित आतिथ्य-सत्कार किया, जिससे वह चकित हो गया कि वनवासीके पास ऐसा ऐश्वर्य कहाँसे आया? यह मालूम होनेपर कि यह सब कामधेनुकी महिमा है, उसने मुनिसे गऊ माँगी, न देनेपर जबर्दस्ती उसे छीन लिया और मुनिके प्राण भी ले लिये। उस समय परशुरामजी घरपर नहीं थे। घरपर आनेपर उन्होंने माताको विलाप करते हुए पाया। कारण जाननेपर उन्होंने पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेका संकल्प किया। कहते हैं कि विलापमें माताने २१ बार छाती पीटी थी, अतः इन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया।

इक्कीसवीं बार क्षत्रियोंका नाश करके परशुरामजीने अश्वमेधयज्ञ किया और उसमें सारी पृथ्वी कश्यपजीको दानमें दे दी। पृथ्वी क्षत्रियोंसे सर्वथा रहित न हो जाय—इस अभिप्रायसे कश्यपजीने उनसे कहा अब यह पृथ्वी हमारी हो चुकी, अब तुम दक्षिण समुद्रकी ओर चले जाओ। चूँकि परशुरामजीके पूर्वजोंने भी यह संहार-कार्य अनुचित कहकर परशुरामजीको इससे निवृत्त होनेका अनुरोध किया था और कश्यपजीने भी पृथ्वी छोड़ देनेको कहा, अतः परशुरामजी दक्षिण समुद्रकी ओर ही चले गये। समुद्रने अपने अन्तर्गत स्थित महेन्द्राचलपर इनको स्थान दिया। श्रीपरशुरामजी कल्पान्त-स्थायी हैं। किसी-किसी भाग्यशाली पुण्यात्माको उनके दर्शन भी हो जाते हैं।

(७) श्रीरामावतारकी कथा—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

अपनी इस प्रतिज्ञाके अनुसार अकारण करुण, करुणावरुणालय भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रजी चार रूप धारण करके श्रीअयोध्यापति चक्रवर्ती महाराजाधिराज श्रीदशरथजीके पुत्ररूपमें चैत्र शुक्ल ९ रामनवमीको अवतरित हुए। महारानी श्रीकौशल्याजीकी कुक्षिसे श्रीराम, श्रीकैकेयीजीकी कुक्षिसे श्रीभरत, श्रीसुमित्राजीकी कुक्षिसे श्रीलक्ष्मण और शत्रुघ्न प्रकट हुए।

यथासमय जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, यज्ञोपवीतादि संस्कार सानन्द सम्पन्न हुए। श्रीराम किशोरावस्थामें प्रवेश करते हैं और '**जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा।········॥ आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥**' इसी हर्षोल्लासके बीच एक दिन श्रीविश्वामित्रजी आते हैं और श्रीदशरथजी महाराजसे अपने यज्ञरक्षणार्थ श्रीरामजी एवं श्रीलक्ष्मणजीको माँग ले जाते हैं। यज्ञमें विघ्न डालनेवाले ताड़का, मारीच, सुबाहु आदि असंख्यों राक्षसोंका सहज ही श्रीराम और लक्ष्मणने वध कर डाला। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। फिर श्रीविश्वामित्रजीके साथ जनकपुरमें श्रीसीताजीका स्वयंवर देखनेके निमित्त जाकर विशाल शम्भु-धनु, जिसे त्रैलोक्यके भटमानी वीर

डिगा भी न सके थे, उसे श्रीरामने मध्यसे ऐसे तोड़ डाला, जैसे मतवाला हाथी कमलनालको तोड़ डालता है। पश्चात् यह शुभ समाचार श्रीअयोध्या भेजा गया और श्रीदशरथजी आये तो बारात लेकर श्रीरामके ब्याहके लिये, परंतु ब्याह हो गया चारों राजकुमारोंका।

अपनी वृद्धावस्थाका आभास पाकर श्रीदशरथजी महाराजने उत्तम गुणोंसे युक्त और सत्य पराक्रमवाले सद्गुणशाली अपने प्रियतम, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ पुत्र श्रीरामको, जो प्रजाके हितमें संलग्न रहनेवाले थे, प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छासे प्रेमवश युवराज-पदपर अभिषिक्त करना चाहा। तदनन्तर श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ देखकर रानी कैकेयीने जिसे पहले ही वर दिया जा चुका था, देवमायासे मोहित होकर, मन्थरासे उकसायी जाकर, राजासे यह वर माँगा कि श्रीरामका निर्वासन (वनवास) और भरतका राज्याभिषेक हो। कैकेयीका प्रिय करनेके लिये, पिताकी आज्ञाके अनुसार इनकी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए वीर श्रीराम वनको चले। विदेहवंशवैजयन्ती मिथिलेशराजनन्दिनी श्रीरामप्रिया श्रीजानकी एवं श्रीसुमित्रानन्दन लक्ष्मण भी प्रेमवश प्रभुके साथ चल दिये। उस समय पिता श्रीदशरथजीने अपना सारथि भेजकर एवं पुरवासियोंने स्वयं साथ जाकर दूरतक उनका अनुसरण किया। श्रीशृंगवेरपुरमें गंगातटपर अपने प्रिय सखा निषादराज गुहके पास पहुँचकर धर्मात्मा श्रीरामने सारथि (सुमन्त्रजी)-को अयोध्याके लिये विदा कर दिया। निषादराज गुह, लक्ष्मण और सीताके साथ श्रीराम मार्गमें बहुत जलवाली अनेकों नदियोंको पार करके एक वनसे दूसरे वनको गये। महर्षि भरद्वाजजीका दर्शनकर गुहको वापसकर उन्होंने महर्षि वाल्मीकिजीका दर्शन किया और उनकी आज्ञासे, चित्रकूट पहुँचकर वहाँ वे तीनों देवता और गन्धर्वोंके समान वनमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हुए एक रमणीय पर्णकुटी बनाकर उसमें सानन्द रहने लगे।

पुत्रशोकमें श्रीदशरथजीके स्वर्गगमनके पश्चात् श्रीवसिष्ठ आदि प्रमुख ब्राह्मणोंद्वारा राज्य-संचालनके लिये नियुक्त किये जानेपर भी महाबलशाली वीर भरतने राज्यकी कामना न करके, पूज्य श्रीरामको प्रसन्न करनेके लिये वनको ही प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे यों प्रार्थना की—धर्मज्ञ! आप ही राजा हों। परंतु महान् यशस्वी श्रीरामने भी पिताके आदेशका पालन करते हुए राज्यकी अभिलाषा न की और भरतके माँगनेपर उन भरताग्रजने राज्यके लिये न्यास (चिह्न)-रूपमें अपनी खड़ाऊँ भरतको देकर उन्हें बार-बार आग्रह करके लौटा दिया। श्रीभरतने श्रीरामके चरणोंका स्पर्श किया और श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए वे नन्दिग्राममें रहकर राज्यकार्य सँभालने लगे। श्रीभरतके लौट जानेपर सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामने, वहाँपर नागरिकोंका पुनः आना-जाना देखकर उनसे बचनेके लिये दण्डकारण्यमें प्रवेश किया। उस महान् वनमें पहुँचनेपर महावीर श्रीरामने विराध नामक राक्षसको मारकर श्रीशरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि मुनियोंका दर्शन किया। श्रीरामने दण्डकारण्यवासी अग्निके समान तेजस्वी उन ऋषियोंको राक्षसोंके मारनेका वचन दिया और संग्राममें उनके वधकी प्रतिज्ञा की।

इसके पश्चात् वहाँ ही रहते हुए श्रीरामने इच्छानुसार रूप बनानेवाली जनस्थाननिवासिनी सूर्पणखा नामकी राक्षसीको लक्ष्मणके द्वारा उसके नाक-कान कटाकर कुरूप कर दिया। पश्चात् सूर्पणखाके द्वारा प्रेरित होकर चढ़ाई करनेवाले खर, दूषण, त्रिशिरादि चौदह हजार राक्षसोंको श्रीरामने युद्धमें मार डाला। तदनन्तर राक्षसेन्द्र रावणने प्रतिशोधकी भावनासे मारीचकी सहायतासे श्रीजानकीजीका अपहरण कर लिया और श्रीजानकीजीको लेकर जाते समय मार्गमें विघ्न डालनेके कारण श्रीजटायुजीको आहत कर दिया। पितृवत् पूज्य जटायुके द्वारा ही श्रीरामजीको श्रीजानकीजीका पता मिला। तब अपनी गोदमें प्राण त्यागे हुए श्रीजटायुजीका अग्नि-संस्कारकर वनमें श्रीसीताजीको ढूँढ़ते हुए उन्होंने कबन्ध नामक राक्षसको देखा तो उसे भी तत्काल मारकर शुभगति प्रदान की। कबन्धके द्वारा संकेत पाकर श्रीराम परम भागवती शबरीजीके

यहाँ गये। उसने इनका पूजन किया। श्रीरामने शबरीका मातृवत् सम्मान किया। उत्तम गति प्रदान की। फिर शबरीके संकेतानुसार श्रीहनुमान्‌जीसे मिलकर सुग्रीवजीसे मित्रता की और सुग्रीवके कथनानुसार संग्राममें बालीको मारकर उसके राज्यपर श्रीरामने सुग्रीवको ही बिठा दिया।

तब उन वानरराज सुग्रीवने भी सभी वानरोंको बुलाकर श्रीजानकीजीका पता लगानेके लिये भेजा। सम्पाती नामक गृध्रके पता बतानेपर महाबलवान् श्रीहनुमान्‌जी सौ योजन विस्तारवाले क्षारसमुद्रको कूदकर लाँघ गये। वहाँ रावणपालित लंकापुरीमें पहुँचकर उन्होंने अशोक-वाटिकामें श्रीसीताजीको चिन्तामग्न देखा। तब उन विदेहनन्दिनीको पहचान (मुद्रिका) देकर श्रीरामका सन्देश सुनाया और उन्हें सान्त्वना देकर उन्होंने वाटिकाका विध्वंस कर डाला, साथ ही अक्षयकुमारादि असंख्य राक्षसोंका संहार कर डाला, इसके बादमें वे जान-बूझकर पकड़में आ गये। श्रीब्रह्माजीके वरदानसे अपनेको ब्रह्मपाशसे छूटा हुआ जानकर भी वीर हनुमान्‌जीने अपनेको बाँधनेवाले उन राक्षसोंका अपराध स्वेच्छानुसार सह लिया। तत्पश्चात् मिथिलेशकुमारी सीताके स्थानके अतिरिक्त समस्त लंकाको जलाकर वे महाकपि श्रीहनुमान्‌जी, श्रीरामको प्रिय सन्देश सुनानेके लिये लंकासे लौट आये और श्रीरामजीकी प्रदक्षिणाकर श्रीजानकीजीका पता बताया। इसके अनन्तर असंख्य वानर सेनाको साथ लेकर श्रीरामने महासागरके तटपर सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंसे समुद्रको क्षुब्ध किया। तब नदीपति समुद्रने अपनेको प्रकट कर दिया, फिर समुद्रके ही कहनेसे श्रीरामने नल-नीलसे पुलका निर्माण कराया। उसी पुलसे लंकापुरीमें जाकर रावणको सदल-बल मारकर भगवान् रामने श्रीजानकीजीको प्राप्त किया।

साध्वी सीताने अपनी अग्निपरीक्षा दी। इसके बाद अग्निके कहनेसे श्रीरामने श्रीसीताको निष्कलंक माना। महात्मा श्रीरामचन्द्रके इस कर्मसे देवता और ऋषियोंसहित चराचर त्रिभुवन सन्तुष्ट हो गया। फिर सभी देवताओंसे पूजित होकर श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए और राक्षसराज विभीषणजीको लंकाके राज्यपर अभिषिक्त करके तथा स्वयं देवताओंसे वर पाकर और मरे हुए वानरोंको जीवन दिलाकर अपने सभी साथियोंके साथ पुष्पक विमानपर चढ़कर अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए। भरद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँचकर सबको आराम देनेवाले सत्य-पराक्रमी श्रीरामने भरतके पास हनुमान्‌जीको भेजा, पुनः श्रीहनुमान्‌जीसे श्रीअवधका समाचार पाकर भरद्वाज-आश्रमसे अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए। श्रीअयोध्या पहुँचकर श्रीअवधवासियोंके उमड़ते हुए अनुरागको देखकर ***'अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहिं कृपाला॥'*** पश्चात् श्रीवसिष्ठजीके आदेशानुसार शुभघड़ीमें श्रीरामभद्रजू राज्यसिंहासनासीन हुए। श्रीरामजीके सिंहासनपर बैठते ही त्रैलोक्य परम आनन्दित हो गया। भगवान् श्रीरामने सुदीर्घकालतक पृथ्वीपर अभूतपूर्व सुशासन स्थापित किया, उनके राज्यमें प्रजामात्र तापत्रयसे सर्वथा मुक्त थी, आज भी रामराज्यको आदर्श माना जाता है।

(८) श्रीकृष्णावतारकी कथा—'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥' 'साधु-पुरुषोंके परित्राण, दुष्टोंके विनाश और धर्मसंस्थापनके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ'—अपने इस वचनको पूर्ण चरितार्थ करते हुए अखिलरसामृतसिन्धु, षडैश्वर्यवान्, सर्वलोकमहेश्वर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भाद्रपदकी कृष्णाष्टमीकी अर्धरात्रिको कंसके कारागारमें परम अद्भुत चतुर्भुज नारायणरूपसे प्रकट हुए। वात्सल्यभावभावितहृदया माता देवकीकी प्रार्थनापर भक्तवत्सल भगवान्‌ने प्राकृत शिशुका-सा रूप धारण कर लिया। श्रीवसुदेवजी भगवान्‌के आज्ञानुसार शिशुरूप भगवान्‌को नन्दालयमें श्रीयशोदाके पास सुलाकर बदलेमें यशोदात्मजा जगदम्बा महामायाको ले आये। गोकुलमें नन्दबाबाके घर ही जातकर्मादि महोत्सव मनाये गये। भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मसे ही सभी लीलाएँ अद्भुत और अलौकिक हैं। पालनेमें झूल रहे थे—उसी समय लोकबालघ्नी रुधिराशना पिशाचिनी पूतनाके प्राणोंको दूधके साथ पी

लिया। शकट भंग किया। तृणावर्त, बकासुर एवं वत्सासुरको पीस डाला। सपरिवार धेनुकासुर और प्रलम्बासुरको मार डाला। दावानलसे घिरे गोपोंकी रक्षा की। कालियनागका दमन किया। श्रीनन्दबाबाको अजगरसे छुड़ाया। इसके बाद गोपियोंने भगवान्‌को पतिरूपसे प्राप्त करनेके लिये व्रत किया और भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया। भगवान्‌ने यज्ञ-पत्नियोंपर कृपा की। गोवर्धन-धारणकी लीला करनेपर इन्द्र और कामधेनुने आकर भगवान्‌का यज्ञाभिषेक किया। शरदृतुकी रात्रियोंमें ब्रज-सुन्दरियोंके साथ रास-क्रीड़ा की। दुष्ट शंखचूड़ यक्ष, अरिष्ट और केशीका वध किया।

तदनन्तर अक्रूरजी मथुरासे वृन्दावन आये और उनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीने मथुराके लिये प्रस्थान किया। श्रीबलराम और श्यामने मथुरामें जाकर वहाँकी सजावट देखी और कुवलयापीड़ हाथी, मुष्टिक, चाणूर एवं कंस आदिका संहार किया। माँ देवकी एवं पिता वसुदेवको कारागारसे मुक्त कराया तथा राजा उग्रसेनको भी कारागारसे मुक्त कराकर राजसिंहासनपर बैठाया। फिर वे सान्दीपनि गुरुके यहाँ विद्याध्ययन करके उनके मृत-पुत्रोंको लौटा लाये। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरामें निवास कर रहे थे, उस समय उन्होंने उद्धव और बलरामजीके साथ यदुवंशियोंका सब प्रकारसे प्रिय और हित किया। जरासंध कई बार बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर आया और भगवान्‌ने उनका उद्धार करके पृथ्वीका भार हलका किया। कालयवनको मुचुकुन्दसे भस्म करा दिया। द्वारकापुरी बसाकर रातों-रात सबको वहाँ पहुँचा दिया। स्वर्गसे कल्पवृक्ष एवं सुधर्मा सभा ले आये। भगवान्‌ने दल-के-दल शत्रुओंको युद्धमें पराजित करके श्रीरुक्मिणीका हरण किया। बाणासुरके साथ युद्धके प्रसंगमें महादेवजीपर ऐसा बाण छोड़ा कि वे जँभाई लेने लगे और इधर बाणासुरकी भुजाएँ काट डालीं। प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भौमासुरको मारकर सोलह हजार कन्याएँ ग्रहण कीं। शिशुपाल, पौण्ड्रक, शाल्व, दुष्ट दन्तवक्त्र, मुर, पंचजन आदि दैत्योंके बल-पौरुषको चूर्णकर उनका वध किया। महाभारत-युद्धमें पाण्डवोंको निमित्त बनाकर पृथ्वीका बहुत बड़ा भार उतार दिया और अन्तमें ब्राह्मणोंके शापके बहाने उद्दण्ड हो चले यदुवंशका संहार करवाया। श्रीउद्धवजीकी जिज्ञासापर सम्पूर्ण आत्मज्ञान और धर्मनिर्णयका निरूपण किया। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्त अद्भुत अलौकिक लीलाएँ हैं, जो जगत्‌के प्राणियोंको पवित्र करनेवाली हैं।

(९) श्रीबुद्ध-अवतारकी कथा—बौद्धधर्मके प्रवर्तक महाराज शुद्धोदनके यशस्वी पुत्र गौतम बुद्धके रूपमें ही श्रीभगवान् अवतरित हुए थे, ऐसी प्रसिद्धि विश्रुत है, परंतु पुराणवर्णित भगवान् बुद्धदेवका प्राकट्य गयाके समीप कीकट देशमें हुआ था। उनके पुण्यात्मा पिताका नाम 'अजन' बताया गया है। यह प्रसंग पुराणवर्णित बुद्धावतारका ही है।

दैत्योंकी शक्ति बढ़ गयी थी। उनके सम्मुख देवता टिक नहीं सके, दैत्योंके भयसे प्राण लेकर भागे। दैत्योंने देवधाम स्वर्गपर अधिकार कर लिया। वे स्वच्छन्द होकर देवताओंके वैभवका उपभोग करने लगे; किंतु उन्हें प्रायः चिन्ता बनी रहती थी कि पता नहीं, कब देवगण समर्थ होकर पुनः स्वर्ग छीन लें। सुस्थिर साम्राज्यकी कामनासे दैत्योंने सुराधिप इन्द्रका पता लगाया और उनसे पूछा—'हमारा अखण्ड साम्राज्य स्थिर रहे, इसका उपाय बताइये।'

देवाधिप इन्द्रने शुद्ध भावसे उत्तर दिया—'सुस्थिर शासनके लिये यज्ञ एवं वेदविहित आचरण आवश्यक है।'

दैत्योंने वैदिक आचरण एवं महायज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। फलतः उनकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। स्वभावसे ही उद्दण्ड और निरंकुश दैत्योंका उपद्रव बढ़ा। जगत्‌में आसुरभावका प्रसार होने लगा।

असहाय और निरुपाय दुखी देवगण जगत्पति श्रीविष्णुके पास गये। उनसे करुण प्रार्थना की।

श्रीभगवान्‌ने उन्हें आश्वासन दिया।

श्रीभगवान्‌ने बुद्धका रूप धारण किया। उनके हाथमें मार्जनी थी और वे मार्गको बुहारते हुए उसपर चरण रखते थे।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध दैत्योंके समीप पहुँचे और उन्हें उपदेश दिया—'यज्ञ करना पाप है। यज्ञसे जीवहिंसा होती है। यज्ञकी प्रज्वलित अग्निमें ही कितने जीव भस्म हो जाते हैं। देखो, मैं जीवहिंसासे बचनेके लिये कितना प्रयत्नशील रहता हूँ। पहले झाड़ू लगाकर पथ स्वच्छ करता हूँ, तब उसपर पैर रखता हूँ।'

संन्यासी बुद्धदेवके उपदेशसे दैत्यगण प्रभावित हुए। उन्होंने यज्ञ एवं वैदिक आचरणका परित्याग कर दिया। परिणामतः कुछ ही दिनोंमें उनकी शक्ति क्षीण हो गयी।

फिर क्या था, देवताओंने उन दुर्बल एवं प्रतिरोधहीन दैत्योंपर आक्रमण कर दिया। असमर्थ दैत्य पराजित हुए और प्राणरक्षार्थ यत्र-तत्र भाग खड़े हुए। देवताओंका स्वर्गपर पुनः अधिकार हो गया।

इस प्रकार संन्यासीके वेषमें भगवान् बुद्धने त्रैलोक्यका मङ्गल किया।

कलियुगमें बौद्धधर्मके प्रवर्तकके रूपमें गौतम बुद्धने जन्म लिया। श्रीबुद्धजीका बचपनका नाम सिद्धार्थ था। ये स्वभावसे बड़े दयावान् थे। किसीका किंचिन्मात्र भी दुःख देख लेते तो विकल हो जाते। यही कारण है कि उनके पिता राजा शुद्धोदनकी ओरसे राज्यमें ऐसी व्यवस्था थी कि कोई दुःखमय प्रसंग इनके दृष्टिपथमें न आने पाये। परंतु यह सब होनेपर भी दैवयोगसे एकदिन सहसा एक रुग्ण पुरुषको, कुछ ही दिन बाद एक अत्यन्त वृद्ध पुरुषको, पश्चात् एक मृतकको देखकर इनकी आत्मा सिहर उठी और उसी दिनसे ये जगत्‌से उदास हो गये।

इनकी यह उदासीनता माता-पिताको खली और इन्हें जगत्-प्रपंचमें फँसानेके लिये अत्यन्त रूपवती यशोधरा नामकी कन्यासे विवाह कर दिया और समयपर सिद्धार्थके राहुल नामका एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। परंतु उदासीनता मिटी नहीं बल्कि बढ़ती ही गयी। परिणामस्वरूप अपनी प्रिय पत्नी यशोधरा, नवजात पुत्र राहुल, स्नेहमूर्ति पिता महाराज शुद्धोदन तथा वैभवसम्पन्न राज्य—इन सबको ठुकराकर युवावस्थामें ही गौतम घरसे निकल पड़े। केवल तर्क-पूर्ण बौद्धिक ज्ञान उन्हें सन्तुष्ट करनेमें समर्थ नहीं था। उन्हें तो रोगपर, बुढ़ापेपर और मृत्युपर विजय पानी थी। उन्हें शाश्वत जीवन—अमरत्व अभीष्ट था। प्रख्यात विद्वानों, उद्भट शास्त्रज्ञोंके समीप वे गये, किंतु वहाँ उनको सन्तोष नहीं हुआ। आश्रमोंसे, विद्वानोंसे निराश होकर वे गयाके समीप वनमें आये और तपस्या करने लगे। जाड़ा, गर्मी और वर्षामें भी बुद्धजी वृक्षके नीचे अपनी वेदिकापर स्थिर बैठे रहे। उन्होंने सब प्रकारका आहार बन्द कर दिया था। दीर्घकालीन तपस्याके कारण उनके शरीरका मांस और रक्त सूख गया, केवल हड्डियाँ, नसें और चर्म ही शेष रहा। गौतमका धैर्य अविचल था। कष्ट क्या है, इसे वे अनुभव ही नहीं करते थे। किंतु उन्हें अपना अभीष्ट प्राप्त नहीं हो रहा था। सिद्धियाँ मँडरातीं, परंतु एक सच्चे साधक, सच्चे मुमुक्षुके लिये सिद्धियाँ बाधक हैं, अतः गौतमने उनपर दृष्टिपात ही नहीं किया।

एक दिन जहाँ गौतम तपस्या कर रहे थे, उस स्थानके समीपके मार्गसे कुछ स्त्रियाँ गाती-बजाती निकलीं। वे जब गौतमकी तपोभूमिके पास पहुँचीं। तब एक गीत गा रही थीं, जिसका आशय था 'सितारके तारोंको ढीला मत छोड़ो नहीं तो वे बेसुरे हो जायँगे, परंतु उन्हें इतना खींचो भी मत कि वे टूट जायँ।' गौतमके कानों में वह संगीत-ध्वनि पड़ी। उनकी प्रज्ञामें सहसा प्रकाश आ गया—'साधनाके लिये केवल कठिन तपस्या ही उपयुक्त नहीं है, संयमित भोजन एवं नियमित निद्रादि व्यवहार भी आवश्यक हैं। इस

प्रकार सम्यक् बोध प्राप्त कर लेनेपर गौतमका नाम 'गौतम बुद्ध' पड़ा। तत्त्वज्ञान होनेके बाद भगवान् बुद्ध वाराणसी चले आये और अपना सर्वप्रथम उपदेश उन्होंने 'सारनाथ' में दिया।

उपदेश—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, नृत्य-गानादि त्याग, सुगन्ध-माला-त्याग, असमय भोजन-त्याग, कोमल शय्या-त्याग, कामिनी-कंचनका त्याग—ये दस सूत्र आपने दुःख-उन्मूलन एवं निर्वाण-प्राप्तिमें परमोपयोगी बताये हैं।

'धम्मं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि'—यह बुद्धजीका शरणागति मन्त्र है।

(१०) कल्कि-अवतारकी कथा —कलियुगके अन्तमें जब सत्पुरुषोंके घर भी भगवान्‌की कथामें बाधा होगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पाखण्डी हो जायँगे और शूद्र राजा होंगे, यहाँतक कि कहीं भी स्वाहा, स्वधा और वषट्कारकी ध्वनि नहीं सुनायी पड़ेगी। राजा लोग प्रायः लुटेरे हो जायँगे, तब कलियुगका शासन करनेके लिये भगवान् बालकरूपमें संभल ग्राममें विष्णुयशके घरमें अवतार ग्रहण करेंगे।

परशुरामजी उनको वेद पढ़ायेंगे। शिवजी शस्त्रास्त्रोंका संधान सिखायेंगे, साथ ही एक घोड़ा और एक खड्ग देंगे। तब कल्किभगवान् ब्राह्मणोंकी सेना साथ लेकर संसारमें सर्वत्र फैले हुए म्लेच्छोंका नाश करेंगे। पापी दुष्टोंका नाश करके वे सत्ययुगके प्रवर्तक होंगे। वे ब्राह्मणकुमार बड़े ही बलवान्, बुद्धिमान् और पराक्रमी होंगे। धर्मके अनुसार विजय प्राप्तकर वे चक्रवर्ती राजा होंगे और इस सम्पूर्ण जगत्‌को आनन्द प्रदान करेंगे। (महाभारत, वनपर्व)

(११) श्रीव्यासजीके अवतारकी कथा—चेदि देशके राजा वसुपर अनुग्रह करके देवराज इन्द्रने एक दिव्य विमान दिया था, जिसपर बैठकर वे आकाशमें सबके ऊपर विचरते थे अतः उनका नाम उपरिचर वसु पड़ गया था। एकबार राजा उपरिचर वसु अपनी ऋतुस्नाता पत्नी गिरिकाको, जिसने पुत्रोत्पत्तिकी कामनासे उचित समयपर समागमकी प्रार्थना की थी, उसे छोड़कर मृगयाके लिये वनमें चले गये। वनमें ऋतुराज वसन्तकी अद्भुत शोभा देखकर राजाको कामोद्दीपन हुआ, जिससे उनका वीर्य स्खलित हो गया। राजाने यह विचारकर कि मेरा वीर्य भी व्यर्थ न जाय और रानीका ऋतुकाल भी व्यर्थ न हो, अतः वटपत्र-पुटकमें रखकर एक बाज पक्षीके द्वारा उस वीर्यको रानीके पास भेजा। संयोगवश मार्गमें एक दूसरे बाजसे संघर्ष हो जानेके कारण वह वीर्य यमुना नदीमें गिर गया, जिसे ब्रह्माजीके शापसे मछलीरूपधारिणी अद्रिका नामकी अप्सरा पी गयी और कालान्तरमें जब मत्स्यजीवी मल्लाहोंके जालमें वह मछली फँसी और मछुओंने उसके पेटको चीरा तो उसमें अत्यन्त सुन्दर एक पुत्र और एक कन्यारत्नको पाया। मछुओंने उन दोनों सन्तानोंको राजा उपरिचर वसुको निवेदन किया। राजाने पुत्र तो स्वयं ले लिया, जो आगे चलकर मत्स्य नामक बड़ा धर्मात्मा राजा हुआ। कन्याके शरीरसे मछलीकी गन्ध आती थी, अतः उसे दासराज नामक मल्लाहको सौंप दिया। वह रूपके साथ-साथ सत्यसे युक्त थी। अतः उसका सत्यवती नाम पड़ा।

एक बार तीर्थयात्राके उद्देश्यसे विचरनेवाले महर्षि पराशरने उसे देखा तो शुभ संयोग देखकर बुद्धिमान् पराशरने उसके साथ समागमकी इच्छा प्रकट की। सत्यवतीने संकुचित होकर अपने कन्यात्वके दूषित होने, दिन होनेके कारण नदीके आर-पार दोनों तटोंपर उपस्थित लोगोंद्वारा देखे जाने तथा अपने शरीरसे मछलीकी-सी दुर्गन्धि निकलनेकी बात कही। समर्थ ऋषिने तीनों कठिनाइयाँ तत्काल दूर कर दीं। आशीर्वाद दिया—तुम्हारा कन्या-भाव सुरक्षित रहेगा। शरीरसे सुन्दर सुगन्धि निकलेगी, जो एक योजनतक फैलेगी और कुहराकी सृष्टिकर चारों ओर अँधेरा कर दिया। तब तो वरदान पाकर प्रसन्न हुई सत्यवतीने उन अद्भुतकर्मा महर्षि पराशरके साथ समागम किया और तत्काल ही एक शिशुको जन्म दिया। यही शिशु पराशरजीसे

उत्पन्न होनेसे पाराशर्य, यमुनाजीके द्वीप (जलसे घिरे भूभाग)-में उत्पन्न होनेसे द्वैपायन, वेदोंका व्यास (विस्तार) करनेसे वेदव्यास नामसे विख्यात हुआ। इन्होंने मातासे कहा—'आवश्यकता पड़नेपर तुम मेरा स्मरण करना, मैं अवश्य दर्शन दूँगा। इतना कहकर माताकी आज्ञा ले श्रीव्यासजीने तपस्यामें मन लगाया। श्रीव्यासजीने देखा कि प्रत्येक युगमें धर्मका एक-एक पाद लुप्त होता जा रहा है। 'मनुष्योंकी शक्ति और आयु क्षीण हो चली है, यह सब देख-सुनकर उन्होंने वेद और ब्राह्मणोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे वेदोंका व्यास (विस्तार) किया। वेदमें सबका अधिकार न होनेसे सर्व-साधारणको वेद-तात्पर्य सुलभ करानेकी दृष्टिसे, आपने पाँचवें वेदतुल्य महाभारत (इतिहास ग्रन्थ)-की रचना की। फिर वेदोंका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये ही महापुराणोंकी रचना की। परंतु मनमें जैसी शान्ति चाहिये वैसी शान्ति नहीं होनेसे, अपनेको अकृतार्थ-सा मानकर, खिन्नताको प्राप्त श्रीव्यासजीने देवर्षि नारदजीकी प्रेरणासे श्रीमद्भागवत-महापुराणकी रचनाकर परम विश्राम पाया। परमहंसाचार्य श्रीशुकदेवजी आपके पुत्र हैं।

(१२) श्रीपृथुजीके अवतारकी कथा—महाराज 'अङ्ग' की पत्नी सुनीथा, जो साक्षात् मृत्युकी कन्या थीं, उससे 'वेन' नामक पुत्र हुआ, जो अपने नाना मृत्युके स्वभावका अनुसरण करनेके कारण अत्यन्त क्रूरकर्म करनेवाला हुआ। फलस्वरूप उसकी दुष्टतासे उद्विग्न होकर राजर्षि अंग नगर छोड़कर चले गये। राजाके अभावमें राज्यमें अराजकता न फैल जाय, इसलिये ऋषियोंने और कोई उपाय न देखकर वेनको अयोग्य होनेपर भी राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। स्वभावसे क्रूर, ऐश्वर्य पाकर अत्यन्त उन्मत्त, विवेकशून्य वेन जब धर्म एवं धर्मात्मा पुरुषोंको विनष्ट करनेपर तुल गया और ऋषियोंके समझानेपर भी समझना तो दूर रहा, उल्टे उनकी अवहेलना की, तब क्षुब्ध ऋषियोंने क्रोध करके हुँकारमात्रसे वेनको मार डाला। परंतु कोई राजा नहीं होनेके कारण लोकमें लुटेरोंके द्वारा प्रजाको बहुत कष्ट होने लगा। यह देखकर ऋषियोंने वेनके शरीरका मन्थन किया। प्रथम जाँघका मन्थन किया तो उसमेंसे एक बौना पुरुष, कुरूप, काला-कलूटा उत्पन्न हुआ और जब उसने पूछा कि मैं क्या करूँ? तो ऋषियोंने कहा—'निषीद' (बैठ जा), इसीसे वह निषाद कहलाया। फिर वेनकी भुजाओंका मन्थन किया तो एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ। ऋषियोंने पुरुषको 'पृथु' नामसे एवं स्त्रीको 'अर्चि' नामसे सम्बोधित किया। ऋषि-ब्राह्मणोंको श्रीपृथुजीके हाथमें बिना किसी रेखासे कटा हुआ चक्रका एवं पाँवमें कमलका चिह्न देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि पृथुके रूपमें साक्षात् श्रीहरिके अंशने ही संसारकी रक्षाके लिये अवतार लिया है और अर्चिके रूपमें निरन्तर भगवान्‌की सेवामें रहनेवाली श्रीलक्ष्मीजी ही प्रकट हुई हैं।

सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे अलंकृत महाराज पृथुका विधिवत् राज्याभिषेक हुआ। उस समय अनेक अलंकारोंसे सजी हुई महारानी अर्चिके साथ वे दूसरे अग्निदेवके सदृश जान पड़ते थे। सब लोगोंने उन्हें तरह-तरहके उपहार भेंट किये। इसके पश्चात् सूत, मागध और बन्दीजनोंने स्तुति की। ब्राह्मणोंने पृथुजीको प्रजाका रक्षक उद्घोषित किया।

वेनके अत्याचारसे उत्पीड़ित पृथ्वीने समस्त औषधियोंको अपनेमें छिपा लिया था और चूँकि बहुत समय बीत गया था, अतः वे औषधियाँ पृथ्वीके उदरमें जीर्ण हो गयी थीं। यही कारण है कि जब श्रीपृथुजीका राज्य हुआ तब भी पृथ्वी रसा होकर भी रसहीना ही बनी रही। फलस्वरूप भूखके कारण प्रजाजनोंके शरीर सूखकर काँटे हो गये थे। उन्होंने अपने स्वामी पृथुके पास आकर कहा। तब पृथुजीने क्रोधमें भरकर पृथ्वीको लक्ष्यकर बाण चढ़ाया। पृथ्वी प्रथम तो डरकर गोरूप धारणकर भागी, परंतु कहीं भी बचाव न देखकर श्रीपृथुजीकी शरणमें आ गयी। तब श्रीपृथुजीने पृथ्वीके संकेतसे गोरूपधारिणी पृथ्वीका दोहन किया, जिससे

पुनः सभी अन्न और औषधियाँ प्रकट हो गयीं। प्रजा सुख-चैनसे रहने लगी।

परम धर्मात्मा श्रीपृथुजीने सौ अश्वमेधयज्ञ करनेका संकल्पकर निन्यानबे यज्ञ पूर्ण होनेपर जब सौवें अश्वमेधयज्ञका प्रारम्भ किया तो इन्द्रने अपना सिंहासन छीने जानेके भयसे बहुत विघ्न किया। तब इन्द्रका वध करनेके लिये उद्यत श्रीपृथुजीको याजकोंने यज्ञमें क्रोधको अनुचित बताकर स्वयं मन्त्रबलसे बलपूर्वक इन्द्रको अग्निमें हवनकर देनेका निश्चय किया। तब लोकस्रष्टा जगत्-पितामह ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंको समझाकर रोका। श्रीपृथुजीका सौ यज्ञ करनेका जो आग्रह था, उससे निवृत्तकर इन्द्रसे सन्धि करा दी। महाराज पृथुके निन्यानबे यज्ञोंसे ही यज्ञभोक्ता यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुको भी बड़ा सन्तोष हुआ। वे देवराज इन्द्रको साथ लेकर श्रीपृथुजीके सामने प्रकट हुए। अपने ही कर्मसे लज्जित इन्द्र श्रीपृथुजीके चरणोंमें गिरना ही चाहते थे कि श्रीपृथुजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया। भगवान्का दर्शनकर श्रीपृथुजी निहाल हो गये। आँखोंमें प्रेमाश्रु, शरीरमें रोमांच, हृदयमें उमड़ा हुआ अनन्त आनन्द-सागर, यह थी उस समय श्रीपृथुजीकी अवस्था। उन्होंने हाथ-जोड़कर भगवान्की स्तुति की। भगवान्ने श्रीपृथुजीके गुणोंकी सराहना करते हुए, वर माँगनेको कहा। तब श्रीपृथुजी बोले—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः॥

(भागवत)

मुझे तो उस मोक्षपदकी भी इच्छा नहीं है, जिसमें महापुरुषोंके हृदयसे उनके मुखद्वारा निकला हुआ आपके चरण-कमलोंका मकरन्द नहीं है, जहाँ आपकी कीर्ति-कथा सुननेका सुख नहीं मिलता है। इसलिये मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीला-गुणोंको सुनता ही रहूँ। इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उनको अपनी भक्तिका वर प्रदानकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

बहुत कालतक धर्मपूर्वक प्रजाका पालनकर श्रीपृथुजी सनत्कुमारजीके उपदेशोंका स्मरणकर कि 'अब मुझे अन्तिम पुरुषार्थ मोक्षके लिये प्रयत्न करना चाहिये' पृथ्वीका भार पुत्रोंको सौंपकर अपनी पत्नीसहित तपोवनको चले गये और वहाँ जाकर भगवान् सनत्कुमारने जिस परमोत्कृष्ट अध्यात्मयोगकी शिक्षा दी थी, उसीके अनुसार पुरुषोत्तम श्रीहरिकी आराधना करने लगे और अन्तमें भगवान्के श्रीचरण-कमलोंका चिन्तन करते हुए ब्रह्मस्वरूपमें लीन हो गये। यह देखकर महाराज पृथुकी पतिव्रता पत्नी अर्चिने चिता बनायी और अपने पतिके साथ सती हो गयीं। परम साध्वी अर्चिको इस प्रकार अपने पति वीरवर पृथुका अनुगमन करते देख सहस्रों वरदायिनी देवियोंने अपने-अपने पतियोंके साथ उनकी स्तुति की। वहाँ देवताओंके बाजे बजने लगे। देवांगनाओंने पुष्प-वृष्टि की।

रञ्जयतीति राजा यः स्वनाम सफलीकृतः।
दुदोह वसुधां बीजं तस्मै श्रीपृथवे नमः॥

(१३) श्रीहरि-अवतारकी कथा—त्रिकूटाचल पर्वतपर जब ग्राहने गजको पकड़ा था तब उसकी आर्तवाणीको सुनकर भगवान् श्रीहरि प्रगट हुए। इन्होंने ही ग्राहको मारकर गजेन्द्रकी रक्षा की तथा लोगोंके बड़े-बड़े संकट हरण करके 'श्रीहरि' यह नाम चरितार्थ किया। कथा इस प्रकारसे है—

क्षीरसागरमें त्रिकूट नामका एक प्रसिद्ध, सुन्दर एवं श्रेष्ठ पर्वत था। वह दस हजार योजन ऊँचा था। उसकी लम्बाई-चौड़ाई भी चारों ओर इतनी ही थी। उस पर्वतराज त्रिकूटकी तराईमें भगवान् वरुणका ऋतुराज नामका उद्यान था, जिसके चारों ओर वृक्षोंके झुण्ड शोभा दे रहे थे। वहीं एक विशाल सरोवर था। उस

पर्वतके घोर-जंगलमें बहुत-सी हथिनियोंके सहित एक गजेन्द्र निवास करता था। जो बड़े-बड़े शक्तिशाली हाथियोंका सरदार था। एक दिन वह अपनी हथिनियोंके साथ वनको रौंदता हुआ उसी पर्वतपर विचर रहा था। मदके कारण उसके नेत्र विह्वल हो रहे थे। बहुत कड़ी धूपके कारण वह व्याकुल हो गया। वह साथियोंसहित प्याससे सन्तप्त होकर जलकी खोजमें फिर रहा था कि उसे दूर ही से कमलके परागसे सुवासित वायुकी सुगन्ध मिली, जिसके सहारे वह उसी सरोवरपर पहुँचा और स्नानकर श्रम मिटाया, प्यास बुझायी, फिर उसमें गृहस्थोंकी भाँति क्रीड़ा करने लगा।

जिस समय वह इतना उन्मत्त हो रहा था, उसी समय एक बलवान् ग्राहने क्रोधमें भरकर उसका पैर पकड़ लिया। हाथी और हथिनियोंने शक्तिभर सहायता की, पर वे गजेन्द्रको बाहर निकालनेमें असमर्थ ही रहे। गजेन्द्र और ग्राह अपनी-अपनी पूरी शक्ति लगाकर भिड़े हुए थे। कभी गजेन्द्र ग्राहको बाहर खींच लाता तो कभी ग्राह गजेन्द्रको भीतर खींच ले जाता। इस प्रकार एक हजार वर्ष बीत गये। अन्तमें गजेन्द्रका उत्साह, बल तथा शक्ति क्षीण हो गयी और ग्राहका बल, उत्साह और शक्ति बढ़ गयी। गजेन्द्रके प्राण संकटमें पड़ गये। वह अपनेको छुड़ानेमें सर्वथा असमर्थ हो गया। बहुत देरतक अपने छुटकारेके उपायपर विचार करता हुआ वह इस निर्णयपर पहुँचा—'जब मेरे बराबरवाले हाथी भी मुझे न छुड़ा सके, तब ये बेचारी हथिनियाँ कब छुड़ा सकती हैं? ग्राहका मुझे ग्रस लेना विधाताकी फाँसी है। अतएव अब मैं सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र आश्रय परब्रह्मकी शरण लेता हूँ, जो प्रचण्ड कालरूपी सर्पसे भयभीत प्राणियोंकी रक्षा करता है तथा मृत्यु भी जिसके भयसे दौड़ती रहती है। यथा—

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात् प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम्।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि॥

(श्रीमद्भा० ८। २। २३)

ऐसा निश्चयकर उसने सूँड़में एक सुन्दर कमलका पुष्प लेकर (जो उस सरोवरमें खिला हुआ था) सूँड़को ऊपर उठाकर बड़े कष्टके साथ पुकारकर कहा—'नारायण! जगद्गुरो! भगवन्! आपको मेरा नमस्कार है। पुकारनेके साथ ही भगवान् गरुड़को छोड़कर तत्काल वहाँ पहुँचे और दोनोंको सरोवरसे निकालकर ग्राहका मुँह चक्रसे फाड़कर गजको छुड़ा दिया। भगवान्का स्पर्श होते ही गजेन्द्रके अज्ञानबन्धन कट गये और वह भगवान्की भाँति चतुर्भुजरूप हो गया, अर्थात् उसे सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुई। भगवान् उसे अपना पार्षद बनाकर अपने साथ ही ले गये।'

(१४) श्रीहंस-अवतारकी कथा—एक बार सनकादिक परमर्षियोंने अपने पिता श्रीब्रह्माजीसे पूछा—पिताजी! चित्त गुणों अर्थात् विषयोंमें घुसा ही रहता है और गुण भी चित्तकी एक-एक वृत्तिमें प्रविष्ट रहते ही हैं अर्थात् चित्त और गुण आपसमें मिले-जुले ही रहते हैं। ऐसी स्थितिमें जो पुरुष इस संसार-सागरसे पार होकर मुक्तिपद प्राप्त करना चाहता है, वह इन दोनोंको एक-दूसरेसे कैसे अलग कर सकता है? यद्यपि श्रीब्रह्माजी देवशिरोमणि, स्वयम्भू और सब प्राणियोंके जन्मदाता हैं तो भी कर्म-प्रवण बुद्धि होनेसे इस प्रश्नका समुचित समाधान न कर सके। अतः इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये उन्होंने भक्ति-भावसे भगवान्का चिन्तन किया।

तब भगवान् हंसका रूप धारण करके उनके सामने प्रकट हुए और श्रीसनकादिक तथा ब्रह्माजीसे वंदित होकर, सनकादिके यह पूछनेपर कि आप कौन हैं? भगवान् बोले—ब्राह्मणो! यदि परमार्थरूप वस्तु नानात्वसे सर्वथा रहित है, तब आत्माके सम्बन्धमें आप लोगोंका ऐसा प्रश्न कैसे युक्तिसंगत हो सकता है? देवता,

मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी शरीर पंचभूतात्मक होनेके कारण अभिन्न ही हैं और परमार्थसे भी अभिन्न हैं। ऐसी स्थितिमें 'आप कौन हैं?' आप लोगोंका यह प्रश्न ही केवल वाणीका व्यवहार है। विचारपूर्वक नहीं है अतः निरर्थक है। मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आप लोग तत्त्व-विचारके द्वारा समझ लीजिये। पुत्रो! यह चित्त चिन्तन करते-करते विषयाकार हो जाता है और विषय चित्तमें प्रविष्ट हो जाते हैं, यह बात सत्य है तथापि विषय और चित्त—ये दोनों ही मेरे स्वरूपभूत जीवके देह हैं—उपाधि हैं। अर्थात् आत्माका चित्त और विषयके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इसलिये बार-बार विषयोंका सेवन करते रहनेसे जो चित्त विषयोंमें आसक्त हो गया है और विषय भी चित्तमें प्रविष्ट हो गये हैं, इन दोनोंको अपने वास्तविक रूपसे अभिन्न मुझ परमात्माका साक्षात्कार करके त्याग देना चाहिये। इस प्रकार भगवान्ने सनकादि मुनियोंके संशय मिटा दिये और भली-भाँति उनके द्वारा पूजित और वन्दित होकर श्रीब्रह्माजी और सनकादिकोंके सामने ही अदृश्य होकर अपने धामको चले गये।

(१५) मन्वन्तरावतारोंकी कथा—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चारों युग जब एक हजार बार व्यतीत होते हैं तो उस कालको कल्प कहते हैं। एक कल्प अर्थात् एक हजार चतुर्युगीकाल श्रीब्रह्माजीका एक दिन होता है। श्रीब्रह्माजीके एकदिन में अर्थात् एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं। प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक कालतक अपना अधिकार भोगते हैं। इन मन्वन्तरोंमें भगवान् सत्त्वगुणका आश्रय ले, अपनी मनु आदि मूर्तियोंके द्वारा पौरुष प्रकट करते हुए इस विश्वका पालन करते हैं। विश्वव्यवस्थाका संचालन करते हुए अपने-अपने मन्वन्तरमें बड़ी सावधानीसे सबके सब मनु पृथ्वीपर चारों चरणोंसे परिपूर्ण धर्मका अनुष्ठान स्वयं करते हैं तथा प्रजासे करवाते हैं। जब एक मनुकी अवधि पूरी हो जाती है तो उनके साथ ही साथ उस समयके इन्द्र, सप्तर्षि, मनुपुत्र और भगवदवतार तथा देवता—ये छहों पहलेकी जगह नये-नये होते हैं।

अब चौदह मनुओंका संक्षिप्त वर्णन करते हैं। **१. स्वायम्भुव मनु**—मरीचि आदि महान् शक्तिशाली ऋषियोंसे भी सृष्टिका अधिक विस्तार नहीं होते देख श्रीब्रह्माजी मन-ही-मन चिन्ता करने लगे—'अहो! बड़ा आश्चर्य है, मेरे निरन्तर प्रयत्न करनेपर भी प्रजाकी वृद्धि नहीं हो रही है। मालूम होता है इसमें दैव ही कुछ विघ्न डाल रहा है।' जिस समय श्रीब्रह्माजी इस प्रकार दैवके विषयमें विचार कर रहे थे, उसी समय अकस्मात् उनके शरीरके दो भाग हो गये। उन दोनों विभागोंमेंसे एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ। उनमेंसे जो पुरुष था, वह सार्वभौम सम्राट् स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी, वह उनकी महारानी शतरूपा हुईं। तबसे मिथुन धर्मसे प्रजाकी वृद्धि होने लगी। महाराज स्वायम्भुवमनुने शतरूपासे पाँच सन्तानें उत्पन्न कीं। श्रीप्रियव्रत और उत्तानपाद—ये दो पुत्र और आकूति, प्रसूति और देवहूति—तीन कन्याएँ थीं। मनुजीने आकूतिका विवाह रुचि प्रजापतिसे, देवहूतिका विवाह कर्दम प्रजापतिसे तथा प्रसूतिका विवाह दक्ष प्रजापतिसे किया। इन तीनों कन्याओंकी सन्ततिसे सारा संसार भर गया।

२. स्वारोचिष मनु—ये अग्निके पुत्र थे। **३. उत्तम मनु**—ये प्रियव्रतके पुत्र थे। **४. तामस मनु**—ये तीसरे मनु उत्तमके सगे भाई थे। **५. रैवत मनु**—ये चौथे मनु तामसके सगे भाई थे। **६. चाक्षुष मनु**—ये चक्षुके पुत्र थे। **७. वैवस्वत मनु**—विवस्वान् (सूर्य)-के पुत्र यशस्वी श्राद्धदेव ही सातवें वैवस्वत मनु हैं। यह वर्तमान मन्वन्तर ही उनका काल है। **८. सावर्णि मनु**—आठवें मन्वन्तरमें सूर्यकी पत्नी छाया देवीके पुत्र सावर्णि मनु होंगे। **९. दक्षसावर्णि**—वरुणके पुत्र दक्षसावर्णि नौवें मनु होंगे। **१०. ब्रह्मसावर्णि**—

उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि दसवें मनु होंगे। **११. धर्मसावर्णि**—ये ग्यारहवें मनु होंगे। **१२. रुद्रसावर्णि**—ये बारहवें मनु होंगे। **१३. देवसावर्णि**—ये तेरहवें मनु होंगे। **१४. इन्द्रसावर्णि**—ये चौदहवें मनु होंगे। ये चौदह मन्वन्तर भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों ही कालमें चलते रहते हैं और समस्त भूमण्डलका शासन करते हुए सनातन-धर्मकी रक्षा करते हैं।

(१६) श्रीयज्ञ-अवतारकी कथा—श्रीस्वायम्भुव मनुकी पुत्री आकूति, जो रुचि प्रजापतिसे ब्याही गयी थीं। उन रुचि प्रजापतिने आकूतिके गर्भसे एक पुरुष और स्त्रीका जोड़ा उत्पन्न किया। उनमें जो पुरुष था, वह साक्षात् यज्ञ-स्वरूपधारी भगवान् विष्णु थे और जो स्त्री थी, वह भगवान्से कभी भी अलग न रहनेवाली लक्ष्मीजीकी अंशरूपा 'दक्षिणा' थीं। मनुजी अपनी पुत्री आकूतिके उस परम तेजस्वी पुत्रको बड़ी प्रसन्नतासे अपने घर ले आये और दक्षिणाको रुचि प्रजापतिने अपने पास रखा। जब दक्षिणा विवाहके योग्य हुई तो उसने यज्ञभगवान्को ही पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा की। तब भगवान् यज्ञपुरुषने उससे विवाह किया। इससे दक्षिणाको बड़ा सन्तोष हुआ। भगवान् यज्ञपुरुषने दक्षिणासे सुयम नामक देवताओंको उत्पन्न किया और तीनों लोकोंके बड़े-बड़े संकट दूर किये। वर्णन आया है—जब स्वायम्भुव मनुने समस्त कामनाओं और भोगोंसे विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया और अपनी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करने वनको चले गये और वनमें जाकर सुनन्दा नदीके तटपर एक पैरसे खड़े रहकर सौ वर्षतक घोर तपस्या की। उस समय एक बार जब स्वायम्भुव मनु एकाग्रचित्तसे भगवान्की स्तुति कर रहे थे, तो भूखे असुर और राक्षस उन्हें नींदमें अचेत होकर बड़बड़ाते जानकर खा डालनेके लिये टूट पड़े। यह देखकर अन्तर्यामी भगवान् यज्ञपुरुष अपने पुत्र 'याम' नामक देवताओंके साथ वहाँ आये, उन्होंने उन्हें खा डालनेके निश्चयसे आये असुरोंका संहार कर डाला और फिर वे इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित होकर स्वर्गका शासन करने लगे।

(१७) श्रीऋषभ-अवतारकी कथा—महाराज नाभिके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये उन्होंने अपनी पत्नी मेरुदेवीके सहित पुत्रकी कामनासे एकाग्रतापूर्वक भगवान् यज्ञपुरुषका यजन किया। भक्तवत्सल भगवान् उनके विशुद्ध भावसे सन्तुष्ट होकर यज्ञमें प्रकट हुए। सभीने सिर झुकाकर अत्यन्त आदरपूर्वक प्रभुकी पूजा की और ऋषियोंने उनकी स्तुतिकर यह वर माँगा कि हमारे यजमान ये राजर्षि नाभि सन्तानको ही परम पुरुषार्थ मानकर आपके ही समान पुत्र पानेके लिये आपकी आराधना कर रहे हैं। आप इनके मनोरथको पूर्ण करें। भगवान् बोले—मुनियो ! मेरे समान तो मैं ही हूँ; क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ। तो भी ब्राह्मणोंका वचन मिथ्या नहीं होना चाहिये, द्विजकुल मेरा ही तो मुख है। इसलिये मैं स्वयं ही अपनी अंशकलासे आग्नीध्रनन्दन नाभिके यहाँ आकर अवतार लूँगा; क्योंकि अपने-समान मुझे कोई और दिखायी नहीं देता। यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और यथासमय महाराज नाभिकी पत्नी मेरुदेवीके गर्भसे ऊर्ध्वरेता मुनियोंका धर्म प्रकट करनेके लिये शुद्ध सत्त्वमय विग्रहसे प्रकट हुए। नाभिनन्दनके अंग जन्मसे ही भगवान् विष्णुके वज्र-अंकुश आदि चिन्होंसे युक्त थे। सभी श्रेष्ठ सद्गुणोंसे युक्त होनेके कारण महाराज नाभिने उनका नाम ऋषभ (श्रेष्ठ) रखा। राजा नाभिने यह देखा कि ऋषभदेव प्राणिमात्रको अत्यन्त प्रिय लगते हैं और राज्य-कार्य सँभालनेयोग्य भी हो गये हैं, तब उन्होंने इन्हें धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये राज्याभिषिक्त कर दिया और स्वयं पत्नी मेरुदेवीके सहित बदरिकाश्रम चले गये और वहाँ भगवान्की आराधना करते हुए भगवत्स्वरूपमें लीन हो गये।

भगवान् ऋषभदेव सर्वधर्मविज्ञाता होकर भी ब्राह्मणोंकी बतलायी हुई विधिसे साम, दानादि नीतिके अनुसार ही पुत्रवत् प्रजाका पालन करते थे। एक बार इन्द्रने ईर्ष्यावश इनके राज्यमें वर्षा नहीं की तो योगेश्वर भगवान् ऋषभने अपनी योगमायाके प्रभावसे अपने वर्ष अजनाभखण्डमें खूब जल बरसाया। आपने लोगोंको

गृहस्थधर्मकी शिक्षा देनेके लिये देवराज इन्द्रकी कन्या जयन्तीसे विवाह किया और उसके गर्भसे अपने ही समान गुणवाले सौ पुत्र उत्पन्न किये।

भगवान् ऋषभदेवजीके सौ पुत्रोंमें भरत सबसे बड़े थे और थे बड़े भगवद्भक्त। श्रीऋषभदेवजीने पृथ्वीका पालन करनेके लिये उन्हें राजगद्दीपर बैठा दिया और स्वयं उपशमशील निवृत्तिपरायण महामुनियोंको भक्ति, ज्ञान और वैराग्यरूप परमहंसोचित शिक्षा देनेके लिये बिलकुल विरक्त हो गये।

निरन्तर परमानन्दका अनुभव करते हुए दिगम्बररूपसे इतस्ततः भ्रमण करते हुए भगवान् ऋषभदेवका शरीर कुटकाचलके वनोंमें घूमते हुए प्रबल दावाग्निकी लाल-लाल लपटोंमें लीन हो गया।

(१८) श्रीहयग्रीव-अवतारकी कथा—सृष्टि-रचनामें अत्यन्त व्यस्त श्रीब्रह्माजीके देखते-देखते मधु और कैटभ नामके दैत्योंने वेदोंको हर लिया और तुरंत रसातलमें जा पहुँचे। वेदोंका हरण हो जानेपर ब्रह्माजीको बड़ा खेद हुआ। उनपर मोह छा गया। तब वह यह विचार करते हुए कि वेद ही तो मेरे नेत्र हैं, वेद ही मेरे परम बल हैं, वेद ही मेरे परम गुरु तथा वेद ही मेरे सर्वोत्तम उपास्य देव हैं; मैं वेदोंके बिना संसारकी उत्तम सृष्टि कैसे कर सकता हूँ? वे भगवान् श्रीहरिकी शरण गये और उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्‌की स्तुति की। ब्रह्माजीकी स्तुतिको सुनकर भक्तवत्सल भगवान् वेदोंकी रक्षा करनेके लिये हयग्रीवरूप धारण करके रसातलमें जा पहुँचे और वहाँ जाकर परमयोगका आश्रय ले शिक्षाके नियमानुसार उदात्त आदि स्वरोंसे युक्त उच्च-स्वरसे सामवेदका गान करने लगे। उन दोनों असुरोंने वह शब्द सुनकर वेदोंको कालपाशसे आबद्ध करके रसातलमें फेंक दिया और स्वयं उसी ओर दौड़े जिधरसे ध्वनि आ रही थी। इसी बीचमें हयग्रीवरूपधारी भगवान् श्रीहरिने रसातलमें पड़े हुए उन सम्पूर्ण वेदोंको ले लिया तथा ब्रह्माजीको पुनः वापस दे दिया और फिर वे अपने आदिरूपमें आ गये।

इधर वेदध्वनिके स्थानपर आकर मधु और कैटभ दोनों दानवोंने जब कुछ नहीं देखा तब वे बड़े वेगसे फिर वहीं लौट आये, जहाँ उन वेदोंको नीचे डाल रखा था। वहाँ देखनेपर उन्हें वह स्थान सूना ही दिखायी दिया। तब वे बलवानोंमें श्रेष्ठ दोनों दानव पुनः उत्तम वेगका आश्रय लेकर रसातलसे शीघ्र ही ऊपर उठे तो आकर देखते हैं कि आदिकर्ता भगवान् योगनिद्राका आश्रय लेकर शेषशय्यापर सो रहे हैं। उन्हें देखकर वे दोनों दानवराज ठहाका मारकर हँसने लगे और उन्होंने भगवान्‌को जगाया। फिर तो उन दोनों असुरोंका भगवान्‌से युद्ध आरम्भ हो गया। भगवान् मधुसूदनने ब्रह्माजीका मान रखनेके लिये तमोगुण और रजोगुणसे आविष्ट शरीरवाले उन दोनों दैत्यों मधु और कैटभको मार डाला। इस प्रकार भगवान् पुरुषोत्तमने हयग्रीवरूप धारणकर ब्रह्माजीका शोक दूर किया। (महाभारत)

एक अन्य कथाके अनुसार दितिपुत्र हयग्रीव नामक दैत्यने देवीकी आराधनाकर उन्हें सन्तुष्टकर अमर होनेका वर माँगा। **'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'** देवीके ऐसा कहनेपर हयग्रीवने कहा—अच्छा तो हयग्रीवके ही द्वारा मारा जाऊँ। भगवान्‌की माया जगन्मोहिनी जगदम्बा इस दैत्यको यह वरदान देकर अन्तर्धान हो गयीं। दैत्यने सोचा हयग्रीव तो एक मैं ही हूँ, मैं भला अपनेको क्यों मारने लगा और दूसरा मुझे मार सकता नहीं, अतः उन्मत्त होकर अपने अत्याचारसे पृथ्वीको व्याकुल करने लगा। तब अकारणकरुण, करुणावरुणालय भगवान्‌ने हयग्रीव-अवतार धारणकर इस दैत्यका वध किया।

(१९) ध्रुववरदेन (श्रीहरि)-के अवतारकी कथा—स्वायम्भुव मनुके पुत्र उत्तानपाद थे, जिनकी दो रानियाँ थीं—एक सुनीति, दूसरी सुरुचि। छोटी रानी सुरुचिपर राजाका बड़ा प्रेम था, उससे उत्तम नामक पुत्र हुआ और सुनीतिसे ध्रुवजी हुए। राजा प्रायः सुरुचिके महलमें रहते थे। एकदिन राजा उत्तानपाद सुरुचिके

पुत्र उत्तमको गोदमें बिठाकर प्यार कर रहे थे, उसी समय ध्रुवजी बालकोंके साथ खेलते-खेलते वहाँ पहुँच गये और पिताकी गोदमें बैठना चाहे परंतु सुरुचिके भयसे राजाने इनकी ओर देखा भी नहीं। ये बालक थे, इससे सिंहासनपर स्वयं चढ़ सकते नहीं थे, अतः इन्होंने कई बार पिताको पुकारा, परंतु राजाने ध्यान नहीं दिया। तब सुरुचि राजाके समीप ही बड़े अभिमानपूर्वक बोली—'वत्स! तू राजाकी गोदमें सिंहासनपर बैठनेकी इच्छा करता है, तू उसके योग्य नहीं है। तू यह इच्छा न कर, क्योंकि तू हमारे गर्भसे नहीं उत्पन्न हुआ। तू राजसिंहासनका अधिकारी तभी होता जब हमारे उदरसे तेरा जन्म होता। तू बालक है, नहीं जानता है कि तू अन्य स्त्रीका पुत्र है। जा पहले तपके द्वारा भगवान्‌को सन्तुष्टकर, उनसे वर माँग कि मेरा जन्म सुरुचिसे हो, तब हमारा पुत्र होकर राजाके आसनका अधिकारी हो सकता है। अभी तेरा या तेरी माँका इतना पुण्य नहीं है।' अपने और अपनी माताके विषयमें ऐसे निरादरभरे और हृदयमें बिंधनेवाले विषैले वचन सुन ध्रुवजी स्तब्ध-से रह गये और लम्बी-लम्बी श्वासें भरने लगे।

राजा यह सब देखते-सुनते रहे, परंतु कुछ न बोले। बालक ध्रुव चीख मारकर रोते, ऊर्ध्व श्वास लेते, ओठ फड़फड़ाते हुए अपनी माँके पास आये। माँने यह दशा देख तुरंत गोदमें उठा लिया। संगके बालकोंने समस्त वृत्तान्त सुनाया। तब वह बोली—वत्स! तू किसीके अमंगलकी इच्छा न कर, कोई दुःख दे तो उसे सह लेना चाहिये। सुरुचिके वचन बहुत उत्तम और सत्य हैं। वस्तुतः हम दुर्भगा, हतभाग्या ही हैं। ध्रुवने पूछा—माँ! मैं और उत्तम दोनों समानरूपसे राजकुमार हैं, तब उत्तम क्यों उत्तम है और क्यों मैं अधम हूँ? राजसिंहासन क्यों उत्तमके योग्य है और क्यों मेरे योग्य नहीं है? सुनीतिने उत्तर दिया—बेटा! सुरुचि और उसके पुत्र उत्तमने पूर्वजन्ममें बड़ा-भारी पुण्य किया है, इसीसे वे राजाके विशेष प्रेमभाजन हैं, राजसिंहासनासीन होनेके अधिकारी हैं। पुण्यसे ही राजसिंहासन मिलता है। यदि तुझे भी राजसिंहासनपर बैठनेकी इच्छा है तो विमाताने जो यथार्थ बात कही है, उसीका द्वेषभाव छोड़कर पालन कर और श्रीअधोक्षज भगवान्‌के चरण-कमलोंकी आराधना कर। देख, उन श्रीहरिके चरण-कमलोंकी आराधना करनेसे ही श्रीब्रह्माजीको भी वह सर्वोत्तम पद प्राप्त हुआ है, जिसकी मुनिजन भी वन्दना करते हैं।

माताके ऐसे मोहतमनाशक वचन सुन बालक ध्रुव यही निश्चयकर, माताको प्रणामकर और आशीर्वाद लेकर चल दिये। श्रीनारदमुनिने जब यह सब सुना तो बड़े विस्मित हुए कि 'अहो! क्षत्रियोंका कैसा अद्भुत तेज है? वे थोड़ा-सा भी मान-भंग नहीं सह सकते। पाँच वर्षका बालक इसको भी सौतेली माँका कटु-वचन नहीं भूलता है।' प्रथम तो श्रीनारदजीने इन्हें आकर समझाया-बुझाया कि घर लौट चलो, हम तुम्हें आधा राज्य दिला देंगे। भगवान्‌की आराधना क्या खेल है? योगी-मुनिसे भी पार नहीं लगता। (इत्यादि वचन परीक्षार्थ कहे) ध्रुवजीने उत्तर दिया—'मैं घोर क्षत्रिय स्वभावके वशमें हूँ। सुरुचिके वचनरूपी बाणोंसे मेरे हृदयमें छिद्र हो गया है। आपके वचन इसीसे उसमें नहीं ठहरते हैं। आपने कृपा करके दर्शन दिया तो अब ऐसी कृपा करिये कि मैं शीघ्र ही श्रीहरिको सन्तुष्टकर वह पद प्राप्त कर लूँ, जो त्रिलोकीमें सबसे श्रेष्ठ है तथा जिसपर मेरे बाप-दादे और दूसरे कोई भी आरूढ़ नहीं हो सके हैं।' देवर्षिने कृपा करके द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-का उपदेश किया और मधुवनमें जाकर आराधना करनेका आदेश दिया।

ध्रुवने मधुवनमें पहुँचकर आराधना आरम्भ कर दी। आराधनाकालमें ध्रुवने शरीर-निर्वाहार्थ तीन-तीन रात्रिके अन्तरसे केवल कैथा और बेर खाकर एक मास व्यतीत किया। दूसरे महीनेमें छः-छः दिनके अन्तरसे सूखे पत्ते और घास खाकर भगवद्भजन किया। तीसरेमें नौ-नौ दिनपर केवल जल पीकर आराधना करते

रहे। चौथे महीनेमें बारह-बारह दिनके अनन्तर केवल वायु पीकर भगवद्-ध्यान करते रहे। पाँचवे महीनेमें तो उन्होंने श्वास लेना भी बन्द कर दिया। भगवान्‌की अतिशय प्रबल मायाने इसी बीच विविध विघ्न किये, परंतु ध्रुवकी ध्रुवनिष्ठाके सामने उसे पराजित ही होना पड़ा। ध्रुवके तपसे तप्त देवताओंने भगवान् श्रीहरिसे पुकार की। भगवान् तो ऐसे महाभागवतका दर्शन करनेके लिये लालायित ही रहते हैं, वे गरुड़पर आरूढ़ होकर मधुवनमें आ गये। प्रभुका दर्शन पाकर बालक ध्रुवको परम आनन्द हुआ, वह प्रेमसे अधीर हो उठा, उसने पृथ्वीपर दण्डके समान पड़कर उन्हें प्रणाम किया। हाथ जोड़े हुए, सिर झुकाये, विनयावनत बालक ध्रुव प्रभुके सामने खड़े होकर स्तुति करना चाहकर भी नहीं कर पाते थे। सर्वान्तर्यामी श्रीहरिने कृपा करके अपने वेदमय शंखको उनके कपोलसे छुआ दिया। ध्रुवको तत्काल दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी और वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। इस प्रकार भगवान्‌ने ध्रुवको वर देनेके लिये श्रीहरि अवतार लिया।

(२०) श्रीधन्वन्तरि-अवतारकी कथा—क्षीरसागरका मन्थन होनेपर आप अमृत-कलश लेकर प्रकट हुए। दैत्योंद्वारा छीने गये यज्ञोंके भाग तथा अमृत देवताओंको आपकी ही कृपासे मिला। आपने संसारको आयुर्वेद विद्या देकर अनन्त रोगोंसे मुक्त किया।

अमृत-वितरण हो जानेपर देवराज इन्द्रने इनसे देववैद्यका पद स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। इन्होंने इन्द्रके इच्छानुसार अमरावतीमें निवास करना स्वीकार कर लिया। कुछ समय बाद पृथ्वीपर अनेक व्याधियाँ फैलीं। तब इन्द्रकी प्रार्थनासे भगवान् धन्वन्तरिने काशिराज दिवोदासके रूपमें पृथ्वीपर अवतार धारण किया। लोक-कल्याणार्थ विविध व्याधियोंको नष्ट करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु धन्वन्तरिके रूपमें कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको प्रकट हुए थे। साक्षात् विष्णुके अंशसे प्रकट होनेसे ये भी श्रीहरिके समान श्याम एवं दिव्य थे।

(२१) श्रीबदरीपति (नर-नारायण)-अवतारकी कथा—दक्षकन्या धर्मकी पत्नी मूर्तिके गर्भसे भगवान् नर-नारायणके रूपमें प्रकटे। उन्होंने आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करानेवाले उस भगवदाराधनरूप कर्मका उपदेश किया, जो वास्तवमें कर्म-बन्धनसे छुड़ानेवाला और नैष्कर्म्य स्थितिको प्राप्त करानेवाला है। उन्होंने स्वयं भी वैसे ही कर्मका अनुष्ठान किया। वे आज भी बदरिकाश्रममें उसी कर्मका आचरण करते हुए विराजमान हैं। इन्द्रने यह आशंका करके कि ये अपने घोर तपके द्वारा मेरा पद छीनना चाहते हैं, उनका तप भ्रष्ट करनेके लिये सदल-बल कामदेवको भेजा। उनकी महिमा न जाननेके कारण गर्वमें आकर कामदेव वहाँ पहुँचकर अप्सरागण, वसन्त, मन्द-सुगन्ध वायु और स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाणोंसे उन्हें बेधनेकी चेष्टा करने लगा। इन्द्रकी कुचाल जानकर, कुछ भी विस्मय न करते हुए आदिदेव नारायणने उन भयसे काँपते हुए कामादिसे हँसकर कहा—हे मदन! हे मन्दमलय मारुत! हे देवांगनाओ! डरो मत। हमारा आतिथ्य स्वीकार करो। उसे ग्रहण किये बिना ही जाकर हमारा आश्रम सूना मत करो।

अभयदायक दयालु भगवान्‌के ऐसा कहनेपर लज्जासे सिर झुकाये हुए देवगणने करुण स्वरसे उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् भगवान्‌ने बहुत-सी ऐसी रमणियाँ प्रकट कीं, जो अद्भुत रूप-लावण्यसे सम्पन्न और वस्त्रालंकारोंसे सुसज्जित थीं तथा भगवान्‌की सेवा कर रही थीं। साक्षात् लक्ष्मीके समान रूपवती स्त्रियोंको देखकर उनके रूप-लावण्यकी महिमासे कान्तिहीन हुए देवगण उनके अंगकी दिव्य गन्धसे मोहित हो गये। अब उनका गर्व चूर-चूर हो गया। तब अत्यन्त दीन हुए उन अनुचरोंसे भगवान् हँसकर बोले—इनमेंसे किसी एकको, जो तुम्हारे अनुरूप हो स्वीकार कर लो। वह स्वर्गलोककी भूषण होगी। देवगणने 'जो आज्ञा' कहकर उनको प्रणाम किया और उर्वशी नामक अप्सराको साथ लेकर स्वर्गलोकमें इन्द्रके पास चले गये।

जैमिनीय भारतमें लिखा है—सहस्त्रकवची दैत्यने तपस्याद्वारा सूर्यभगवान्‌को प्रसन्न किया और वर माँगा कि मेरे शरीरमें एक हजार कवच हों। जब कोई एक हजार वर्ष युद्ध करे, तब कहीं एक कवच टूट सके, पर कवच टूटते ही शत्रु मर जाय। उसीको मारनेके लिये नर-नारायणका अवतार हुआ था। एक भाई हजार वर्षतक युद्ध करता और एक कवच तोड़कर मृतक-सा बन जाता, तब दूसरा भाई उसे मन्त्रसे जिलाकर और स्वयं एक हजार वर्ष युद्ध करके दूसरा कवच तोड़कर मृतक-सा बन जाता। तब पहला भाई इनको जिलाता और स्वयं युद्ध करता। इस तरहसे लड़ते-लड़ते जब एक कवच रह गया, तब दैत्य भागकर सूर्यमें लीन हो गया और तब नर-नारायण भगवान् बदरिकाश्रममें जाकर तप करने लगे। वही असुर द्वापरमें कर्ण हुआ, जो गर्भसे ही कवच धारणकर पैदा हुआ। तब नर-नारायणने ही अर्जुन और कृष्ण हो उसे मारा।

(२२) श्रीदत्तात्रेय-अवतारकी कथा—महर्षि अत्रिकी तपस्यासे चित्रकूटमें माता अनसूयाके गर्भसे भगवान् दत्तात्रेयरूपमें प्रकट हुए। वर देते समय भगवान्‌ने कहा था कि मैंने अपनेको तुम्हें (दत्त) दे दिया, अतः इनका दत्त नाम पड़ा। भगवान् दत्तात्रेयके चरणोंकी सेवासे राजा यदु तथा सहस्त्रार्जुन आदिने योग-भोग तथा मोक्षकी भी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं।

(२३) श्रीकपिल-अवतारकी कथा—महर्षि कर्दमकी धर्मपत्नी देवहूतिके गर्भसे विन्दुसरोवरके निकट नौ बहनोंके बाद भगवान् कपिलदेव प्रकट हुए। इनके केश सुवर्णके समान कपिल वर्णके थे, इसीलिये इनका नाम कपिल हुआ। इन्होंने अपनी माताको आत्मज्ञानका उपदेश दिया, जिससे वे भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको समझकर स्वल्प समयमें ही, मोक्षपदको प्राप्त कर लीं। श्रीकपिलदेवजी माताको उपदेश देकर उनकी अनुमति लेकर बिन्दुसरसे समुद्रतटपर जा विराजे। जहाँ अश्वमेधयज्ञके अश्वको खोजते हुए राजा सगरके साठ हजार पुत्र भागवत-अपराधरूप पापसे भस्म हो गये। आपकी कृपासे ही गंगाजी धरातलपर आयीं और उन सगर-पुत्रोंका तो उद्धार हुआ ही आज भी जगत्‌का कल्याण हो रहा है। आज भी गंगा-सागर-संगममें श्रीकपिलभगवान् विराजमान हैं। आपने ऋषियोंको सांख्यशास्त्रका उपदेश दिया। आप सांख्ययोगके आचार्य हैं।

(२४) श्रीसनकादि-अवतारकी कथा—सृष्टिके आरम्भमें श्रीब्रह्माजीने लोकोंको रचनेकी इच्छासे तप किया। ब्रह्माके अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने तप अर्थवाले 'सन्' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमाररूपसे अवतार ग्रहण किया। इस अवतारके द्वारा भगवान्‌ने पहले कल्पके भूले हुए आत्मज्ञानको ऋषियोंके प्रति यथावत् उपदेश किया। इन्होंने आदिराज पृथुको भी उपदेश दिया था। सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न होनेसे ये बहुकालीन हैं। परंतु सदा पाँच वर्षके बालकके रूपमें ही रहते हैं, जिससे मायाका विकार न उत्पन्न हो सके। ये सदा मनसे अपने ब्रह्म-स्वरूपमें लीन रहते हैं और जीवन्मुक्त हैं। इनको उत्पन्न करके ब्रह्माजीने जब यह आज्ञा दी कि जाकर प्रजासृष्टिकी रचना करो। तब इन्होंने प्रपंच-विस्तारका अनौचित्य एवं वैराग्यपूर्वक भगवद्भजनका औचित्य दिखाकर ब्रह्माजीको निरुत्तरकर वनकी राह ली। आप अखण्ड ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं और अपने तपसे समस्त लोकोंका सदा कल्याण करते हैं।

श्रीरामजीके चरणचिह्न

अंकुस अंबर कुलिस कमल जव धुजा धेनुपद।
संख चक्र स्वस्तिक जंबूफल कलस सुधाह्रद॥
अर्धचंद्र षटकोन मीन बिंदु ऊरधरेखा।

अष्टकोन त्रयकोन इंद्रधनु पुरुषविशेषा॥
सीतापति पद नित बसत एते मंगलदायका।
चरन चिह्न रघुबीर के संतन सदा सहायका॥ ६॥

सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंमें अंकुश, अम्बर, वज्र, कमल, जव, ध्वजा, गोपद, शंख, चक्र, स्वस्तिक, जम्बूफल, कलश, अमृतकुण्ड, अर्धचन्द्र, षट्कोण, मीन, बिन्दु, ऊर्ध्वरेखा, अष्टकोण, त्रिकोण, इन्द्रधनुष और पुरुष-विशेष—ये बाईस चिह्न विराजते हैं। राघवेन्द्रसरकारके ये चरणचिह्न भक्तोंको मंगलदायक तथा सदा सहायक हैं॥ ६॥

श्रीप्रियादासजी चरणचिह्नोंकी महिमाका निम्न कवित्तोंमें वर्णन करते हुए कहते हैं—

सन्तनि सहाय काज धारे नृपराज राम चरण सरोजन में चिह्न सुखदाइये।
मन ही मतंग मतवारो हाथ आवै नाहिं ताके लिये अंकुश लै धार्‌यो हिये ध्याइये॥
सठता सतावै सीत ताही ते अम्बर धर्‌यो हर्‌यो जन शोक ध्यान कीन्हे सुख पाइये।
ऐसे ही कुलिश पाप पर्वत के फोरिबे को भक्ति निधि जोरिबे को कंज मन लाइये॥ १५॥

सन्तोंकी सहायताके लिये राजाधिराज भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरणकमलोंमें सुख देनेवाले इन चिह्नोंको धारण किया है। मनरूपी उन्मत्त हाथी किसी भी प्रकार वशमें नहीं आता है, इसलिये भगवान्‌ने अंकुशका चिह्न धारण किया है। मनोजयके लिये अंकुशका ध्यान करना चाहिये। जड़तारूपी जाड़ा भक्तोंको दुःख देता है, इसलिये वस्त्रचिह्न धारण करके प्रभुने उनका शोक दूर किया, भक्तजन ध्यान करके सुख प्राप्त करें। इसी प्रकार पापरूपी पहाड़ोंको फोड़नेके लिये वज्रका चिह्न और भक्तिरूपी नवनिधि जोड़नेके लिये कमलका चिह्न धारण किया, इनका ध्यान कीजिये॥ १५॥

जव हेतु सुनो सदा दाता सिद्धि विद्या ही को सुमति सुगति सुख सम्पत्ति निवास है।
छिनु में सभीत होत कलि की कुचाल देखि ध्वजा सो विशेष जानो अभैको विश्वास है॥
गोपद सो है हैं भवसागर नागरनर जो पै नैन हिय के लगावै मिटै त्रास है।
कपट कुचाल माया बल सबै जीतिबे को दर को दरस कर जीत्यो अनायास है॥ १६॥

जव चिह्नके धारणका कारण सुनिये। यह सर्वविद्या और सिद्धियोंका दाता है, इसमें सुमति, सुगति और सुख-सम्पत्तिका निवास है, ध्यान करनेवालोंको इनकी प्राप्ति होती है। कलियुगकी कुटिल गति देखकर भक्तलोग क्षणभरमें ही भयभीत हो जाते हैं, विशेष करके उनको निर्भयताका विश्वास दिलानेके लिये भगवान्‌ने अपने चरणोंमें ध्वजाका चिह्न धारण किया है। चतुर भक्तजन यदि हृदयके नेत्र गोपदचिह्नमें लगायें तो अपार भवसागर गायके खुरके समान छोटा (सहज पार करनेयोग्य) हो जाता है और सभी संसारी कष्ट मिट जाते हैं। मायाका कपट, मायाकी कुचाल और मायाके सम्पूर्ण बलको जीतनेके लिये प्रभुने शंखचिह्न धारण किया, इसका ध्यान करके भक्तोंने सहज ही मायाको जीत लिया॥ १६॥

कामहू निशाचर के मारिबे को 'चक्र' धर्‌यो मंगल कल्याण हेतु 'स्वस्तिक' हूँ मानिये।
मंगलीक 'जंबूफल' फल चारि हूँ कौ फल कामना अनेक विधि पूर्ण नित ध्यानिये॥
'कलश' 'सुधा को सर' भर्‌यो हरि भक्ति रस, नैन पुट पान कीजै जीजै मन आनिये।
भक्ति को बढ़ावै और घटावै तीन तापहूँ को, 'अर्धचन्द्र' धारण ये कारण हैं जानिये॥ १७॥

भगवान्‌ने कामरूपी निशाचरको मारनेके लिये अपने चरणमें चक्रचिह्न धारण किया। ध्यान करनेवालेके

मंगल और कल्याणके लिये स्वस्तिकरेखा धारण की, ऐसा मानिये। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों फलोंका फल जम्बूफल मंगल करनेवाला और अनेक प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, इसका नित्य ध्यान कीजिये। अमृतका कलश और अमृतका कुण्ड—ये चिह्न इसलिये धारण किये कि ध्याताके हृदयमें भक्तिरस भरे। ध्यानके कटोरेसे पीकर सदा अमर रहें, भक्तजन मनमें ध्यान करें। अर्धचन्द्रके धारणका कारण यह जानिये कि वह ध्यान करनेवालेके तीनों तापोंको नष्ट करे और भक्तिको बढ़ाये॥ १७॥

विषया भुजंग बलमीक तनमाहिं बसै दास कौ न डसै याते यत्न अनुसर्‌यौ है।
'अष्टकोन' 'षटकोन' औ 'त्रिकोन' जंत्र किये जिये जोई जानि जाके ध्यान उर भर्‌यो है॥
'मीन' 'बिन्दु' रामचन्द्र कीन्ह्यो वशीकर्ण पाँय ताहि ते निकाय जन मन जात हर्‌यो है।
सागर संसार ताको पारावार पावें नाहिं 'ऊर्ध्वरेखा' दासन को सेतु बन्ध कर्‌यो है॥ १८॥

काम आदि विषयरूपी साँप शरीररूपी बाँबीमें बसते हैं, वे भक्तोंको न डँसें, इसलिये यह उपाय किया है कि अष्टकोण, षट्कोण और त्रिकोण यन्त्र चिह्नोंको धारण किया, ऐसा जानकर जिस-जिसने हृदयमें इनका ध्यान किया, वे विषयरूपी सर्पसे बचे और जीवित रहे अर्थात् उनका निरन्तर भगवान्‌में प्रेम बना रहा। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरणकमलमें मीन और बिन्दुचिह्नोंको वशीकरण यन्त्र बनाकर धारण किया, इसीसे बहुत-से भक्तोंके मन हरे जाते हैं। संसाररूप सागर अपार है, जिसका कोई पार नहीं पा सकता, इसलिये ऊर्ध्वरेखा धारणकर पुल बाँध दिया है। ध्यान करनेवाले सहजमें ही संसार-सागर पार कर जाते हैं॥ १८॥

'धनु' पद माहिं धर्‌यो हर्‌यौ शोक ध्यानिनको मानिनको मार्‌यो मान रावणादि साखिये।
'पुरुष विशेष' पदकमल बसायो राम, हेतु सुनो अभिराम श्याम अभिलाषिये॥
सूधो मन सूधी बैन सूधी करतूति सब ऐसो जन होय मेरो, याही के ज्यों राखिये।
जो पै बुधिवन्त रसवन्त रूप सम्पत्ति में, करि हिये ध्यान हरिनाम मुख भाषिये॥ १९॥

श्रीराघवेन्द्रसरकारने अपने श्रीचरणोंमें इन्द्रधनुषका चिह्न धारण करके ध्यान करनेवाले भक्तोंका दुःख दूर किया और रावण आदि अहंकारियोंके अहंकारका भी धनुषसे ही नाश किया, सो प्रसिद्ध है। पुरुषविशेष-चिह्न अपने पदकमलमें बसाया, उसका कारण सुनिये और श्यामसुन्दरको प्राप्त करनेकी अभिलाषा कीजिये। उनका कथन है कि हमारा भक्त यदि सरल मनवाला, सत्य, सरल वचनवाला और शुद्ध, सरल कर्मवाला हो तो इसी पुरुष चिह्नके समान मैं चरण-शरणमें रखूँगा। जो जन बुद्धिमान् हों, रूप-सम्पत्तिके रसिक हों, वे पूर्ववर्णित इन श्रीचरणचिह्नोंका हृदयमें ध्यान करके मुखसे भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करते रहें॥ १९॥

द्वादश प्रधान भक्त

बिधि नारद संकर सनकादिक कपिलदेव मनुभूप।
नरहरिदास जनक भीषम बलि सुकमुनि धर्मस्वरूप॥
अंतरंग अनुचर हरिजू के जो इन कौ जस गावै।
आदि अंत लौं मंगल तिन को श्रोता बक्ता पावै॥
अजामेल परसँग यह निरनै परम धर्म को जान।
इन की कृपा और पुनि समझै द्वादस भक्त प्रधान॥ ७॥

श्रीब्रह्माजी, श्रीनारदजी, श्रीशंकरजी, श्रीसनकादिक, श्रीकपिलदेवजी महाराज, श्रीमनुजी, श्रीप्रह्लादजी,

श्रीजनकजी, श्रीभीष्मपितामहजी, श्रीबलिजी, महामुनि श्रीशुकदेवजी और श्रीधर्मराजजी—ये बारहों भगवान्‌के अन्तरंग सेवक हैं, जो इनके यशको सुनें और गायें, उन सभी श्रोता और वक्ताओंका आदिसे अन्ततक सर्वदा मंगल हो। अजामिलके प्रसंगमें धर्मराजका यह परमश्रेष्ठ निर्णय जानिये कि इन्हींकी कृपासे और दूसरे भक्त भक्तिके रहस्योंको समझते हैं, ये द्वादश प्रधान भक्त हैं॥ ७॥

यहाँ संक्षेपमें श्रीब्रह्माजी, श्रीनारदजी आदि इन भक्तोंका वर्णन प्रस्तुत है—

(१) श्रीब्रह्माजी

द्वादश प्रधान महाभागवतोंमें श्रीब्रह्माजी अग्रगण्य हैं। श्रीमद्भागवतजीमें भी यमराजजीने अपने दूतोंसे परमभागवतोंका वर्णन करते हुए श्रीब्रह्माजीकी गणना सर्वप्रथम की है, यथा—

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते॥

(६।३।२०)

अर्थात् भगवान्‌के द्वारा निर्मित भागवतधर्म परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है। उसे जानना बहुत ही कठिन है। जो उसे जान लेता है, वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेता है। दूतो! भागवतधर्मका रहस्य हम बारह व्यक्ति ही जानते हैं। ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, भगवान् शंकर, सनत्कुमार, कपिल, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म पितामह, बलि, शुकदेवजी और मैं (धर्मराज)।

सृष्टिके पूर्व यह सम्पूर्ण विश्व प्रलयार्णवके जलमें डूबा हुआ था। उस समय एकमात्र श्रीनारायणदेव शेषशय्यापर पौढ़े हुए थे। सृष्टिकाल आनेपर भगवान् नारायणकी नाभिसे एक परम प्रकाशमय कमल प्रकट हुआ और उसी कमलसे साक्षात् वेदमूर्ति श्रीब्रह्माजी प्रकट हुए। उस कमलकी कर्णिकामें बैठे हुए ब्रह्माजीको जब कोई लोक दिखायी नहीं दिया, तब वे आँखें फाड़कर आकाशमें चारों ओर गर्दन घुमाकर देखने लगे, इससे उनके चारों दिशाओंमें चार मुख हो गये। आश्चर्यचकित श्रीब्रह्माजी कुतूहलवश कमलके आधारका पता लगानेके लिये उस कमलकी नालके सूक्ष्म छिद्रोंमें होकर उस जलमें घुसे। परंतु दिव्य सहस्रों वर्षोंतक प्रयत्न करनेपर भी कुछ भी पता न मिलनेपर अन्तमें विफल मनोरथ हो, वे पुनः कमलपर लौट आये। तदनन्तर अव्यक्त वाणीके द्वारा तप करनेकी आज्ञा पाकर श्रीब्रह्माजी एक सहस्र दिव्य वर्षपर्यन्त एकाग्रचित्तसे कठिन तप करते रहे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें अपने लोकका एवं अपना दर्शन कराया। सफल-मनोरथ श्रीब्रह्माजीने भगवान्‌की स्तुति की। भगवान्‌ने उन्हें भागवत-तत्त्वका चार श्लोकोंमें उपदेश दिया, जिसे चतुःश्लोकी भागवत कहते हैं। उपदेश देकर भगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजी! आप अविचल समाधिके द्वारा मेरे इस सिद्धान्तमें पूर्ण निष्ठा कर लो। इससे तुम्हें कल्प-कल्पमें विविध प्रकारकी सृष्टि-रचना करते रहनेपर भी कभी मोह नहीं होगा। फिर भगवान्‌ने अपने संकल्पसे ही ब्रह्माजीके हृदयमें सम्पूर्ण वेद-ज्ञानका प्रकाश कर दिया—

यथा—**'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः'**—भगवान्‌ने अपने संकल्पसे ही ब्रह्माजीको उस वेदज्ञानका दान किया, जिसके सम्बन्धमें बड़े-बड़े विद्वान् लोग भी मोहित हो जाते हैं। कालान्तरमें श्रीनारदजीकी सेवासे सन्तुष्ट होकर श्रीब्रह्माजीने उनको चतुःश्लोकी भागवत-तत्त्वका उपदेश किया और देवर्षि नारदजीने वह तत्त्व-ज्ञान भगवान् वेदव्यासजीको सुनाया और श्रीव्यासजीने चार श्लोकोंसे ही अठारह

हजार श्लोकोंके रूपमें श्रीमद्भागवत-महापुराणकी रचनाकर उसे श्रीशुकदेवजीको पढ़ाया। इस प्रकार श्रीमद्भागवतका लोकमें विस्तार हुआ।

भगवान्‌के द्वारा प्राप्त उपदेशका निरन्तर चिन्तन करते रहनेसे तथा भगवत्स्वरूपका ध्यान करते रहनेसे श्रीब्रह्माजीका अपने मन-वाणी और इन्द्रियोंपर इतना अधिकार हो गया है कि सदा-सर्वदा जगत्-प्रपंचमें लगे रहनेपर भी इनकी वृत्तियाँ स्वप्नमें भी असत्‌की ओर नहीं जाती हैं।

श्रीब्रह्माजीके परम सौभाग्यका क्या कहना है? जो कि ये भगवान्‌के समस्त अवतारोंके दर्शन-स्तवन करते हैं। **'कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं'** इसके अनुसार ब्रह्माजीके अधिकारकालमें ३६०० बार भगवान्‌के विविध अवतार होते हैं; क्योंकि एक कल्प ब्रह्माजीका एक दिन होता है और सौ वर्षकी ब्रह्माजीकी आयुमें ३६०० कल्प दिनके (उतने ही रात्रिके भी) होते हैं। साथ ही प्राय: अधिकांश अवतार ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे होते हैं।

(२) श्रीनारदजी

'उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे' अर्थात् प्रजापति ब्रह्माजीकी गोदसे श्रीनारदजी उत्पन्न हुए। जब ब्रह्माजीने इन्हें भी सृष्टि-विस्तारकी आज्ञा दी तो श्रीनारदजीने यह कहकर कि 'अमृतसे भी अधिक प्रिय श्रीकृष्ण-सेवा छोड़कर कौन मूर्ख विषय नामक विषका भक्षण (आस्वादन) करेगा? ब्रह्माजीकी आज्ञाका अनौचित्य दिखाया। श्रीनारदजीकी यह बात सुनकर ब्रह्माजी रोषसे आग-बबूला हो गये और नारदजीको शाप देते हुए बोले—नारद! मेरे शापसे तुम्हारे ज्ञानका लोप हो जायगा, तुम पचास कामिनियोंके पति बनोगे। उस समय तुम्हारी उपबर्हण नामसे प्रसिद्धि होगी, फिर मेरे ही शापसे दासीपुत्र बनोगे, पश्चात् सन्त-भगवन्त-कृपासे मेरे पुत्ररूपमें प्रतिष्ठित हो जाओगे।

ब्रह्माजीके दिये हुए उस शापके ही कारण नारदजी आगे चलकर उपबर्हण नामके गन्धर्व हुए और चित्ररथ गन्धर्वकी पचास कन्याओंने उन्हें पतिरूपमें वरण किया। एक बार वे पुष्करक्षेत्रमें श्रीब्रह्माजीके स्थानपर गये और वहाँ श्रीहरिका यशोगान करने लगे। वहीं रम्भा अप्सराको नृत्य करते देखकर काममोहित होनेसे वीर्य स्खलित हो गया, जिससे कुपित होकर ब्रह्माजीने उन्हें शाप देते हुए कहा—तुम गन्धर्व-शरीरको त्यागकर शूद्रयोनिको प्राप्त हो जाओ। शाप सुनकर उपबर्हणने तत्काल उस शरीरको योग-क्रियाके द्वारा छोड़ दिया और कालान्तरमें द्रुमिल गोपकी पत्नी कलावतीके गर्भसे उत्पन्न होकर दासीपुत्र कहलाये।

द्रुमिल गोपके स्वर्ग सिधार जानेपर कलावती एक सदाचारी ब्राह्मणके घर सेवा-कार्य करती हुई जीवन-यापन करने लगी। उस समयका अपना चरित्र बताते हुए नारदजीने व्यासजीसे कहा कि मैंने ब्राह्मणके घर चातुर्मास्य बितानेके लिये सन्तोंमें निवास किया। ब्राह्मणकी आज्ञासे मैं मातासमेत सन्तोंकी सेवामें लगा रहता था और पात्रोंमें लगी हुई उनकी जूठन दिनमें एक बार खा लिया करता था, जिससे मेरे सब पाप दूर हो गये, हृदय शुद्ध हो गया, जैसा भजन-पूजन वे लोग करते थे, उसमें मेरी भी रुचि हो गयी।

चातुर्मास्य करके जाते हुए साधुओंने मुझ शान्त, विनम्र बालकको भगवान्‌के रूप-ध्यान और नाम-जपका उपदेश दिया। कुछ ही दिन बाद सायंकालमें गाय दुहाकर लौटते समय साँपके काटनेसे माताकी मृत्यु हो गयी। तब मैं भगवान्‌की कृपाका सहारा लेकर उत्तर दिशाकी ओर वनमें चला गया। थककर पीपलके नीचे बैठकर ध्यान करते हुए मेरे हृदयमें प्रभु प्रकट हो गये, मैं आनन्दमग्न हो गया। परंतु वह झाँकी तो विद्युत्‌की भाँति आयी और चली गयी। मैं पुन: दर्शन पानेके लिये व्याकुल हो गया। उस समय आकाशवाणीने आश्वासन देते हुए बतलाया—'अब इस जन्ममें तुम मुझे नहीं देख सकते। यह एक झाँकी तो मैंने तुम्हें

कृपा करके इसलिये दिखलायी कि इसके दर्शनमें तुम्हारा चित्त मुझमें लग जाय।' तब मैं दयामय भगवान्को प्रणामकर उनका गुण गाते हुए पृथ्वीपर घूमने लगा। समय आनेपर मेरा वह शरीर छूट गया, तब दूसरे कल्पमें मैं ब्रह्माजीका पुत्र हुआ। व्यासजी! अब तो जब मैं वीणा बजाकर प्रभु गुण-गान करता हूँ तो बुलाये हुए की तरह भगवान् मेरे चित्तमें तुरंत प्रकट हो जाते हैं।

नारदजी देवर्षि हैं तथा वेदान्त, योग, ज्योतिष, वैद्यक, संगीत तथा भक्तिके मुख्य आचार्य हैं। पृथ्वीपर भक्ति-प्रचारका श्रेय आपको ही है। भक्तिदेवी तथा ज्ञान-वैराग्यका कष्ट दूर करते हुए वृन्दावनमें आपने प्रतिज्ञा की है कि—'हे भक्तिदेवी! कलियुगके समान दूसरा युग नहीं है, अतः कलियुगमें दूसरे धर्मोंका तिरस्कार करके और भक्ति-विषयक महोत्सवोंको आगे करके जन-जन और घर-घरमें तुम्हारी स्थापना न करूँ तो मैं हरिदास न कहाऊँ।'

स्वयं भक्तिने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि हे ब्रह्मपुत्र! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे एक बारके उपदेशसे प्रह्लादने मायापर विजय तथा ध्रुवने ध्रुवपद प्राप्त कर लिया। यथा—

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि॥

(३) श्रीशंकरजी

द्वादश परम भागवतोंमें श्रीशिवजीका प्रमुख स्थान है। भगवान्के स्वभाव, प्रभाव, गुण, शील, माहात्म्य आदिके जाननेवालोंमें भी श्रीशिवजी अग्रगण्य हैं। भगवान्के नामके प्रभावको जैसा श्रीशिवजी जानते हैं, वैसा कोई जाननेवाला नहीं है। यथा—'*नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥*' भगवान् नीलकण्ठ श्रीशिवजीका हलाहलपान इस बातका साक्षी है। अमृतके लोभसे समुद्र-मन्थन किये जानेपर सर्वप्रथम कालकूट (महाविष) निकला, जो सब लोकोंको असह्य हो उठा। देवता और दैत्यतक उसकी झारसे झुलसने लगे।

तब भगवान्का संकेत पाकर सबके सब मृत्युंजय श्रीशिवजीकी शरणमें गये और जाकर उन्होंने उनकी स्तुति की। करुणावरुणालय भगवान् शंकर इनका दुःख देखकर सतीजीसे बोले—'देवि! प्रजा एवं प्रजापति महान् संकटमें पड़े हैं, इनके प्राणोंकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है, अतः मैं इस विषको पी लूँगा, जिससे इन सबका कल्याण हो।' भवानीने इस इच्छाका अनुमोदन किया। जगज्जननी जो ठहरीं तथा उन्हें विश्वनाथका प्रभाव भी सर्वथा ज्ञात था। फिर तो श्रीशिवजीने यह कहकर कि—

श्रीरामनामाखिलमन्त्रबीजं मम जीवनं च हृदये प्रविष्टम्।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भयम्॥

अर्थात् श्रीराम-नाम समस्त मन्त्रोंका बीज है। मेरा जीवन है तथा मेरे हृदयमें प्रविष्ट होकर स्थित है। फिर तो चाहे हलाहल पान करना हो, चाहे प्रलयानल पान करना हो, चाहे मृत्युके मुखमें ही क्यों न प्रवेश करना हो, भय ही किस बातका? हलाहल विष भी पान कर लिया और आश्चर्यकी बात यह है कि—'*खायो कालकूट भयो अजर अमर तनु।*'

हलाहलपानके प्रसंगसे श्रीशिवजीकी निष्ठा तथा जीवोंपर दयाका भाव प्रकाशमें आता है। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि—'*जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय। तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥*' (रा०च०मा०) श्रीशिवजी स्वयं निरन्तर राम-नाम जपते रहते हैं। यथा—'*तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥ संतत जपत संभु अबिनासी।*

भगवान् श्रीशंकरजी [पृ० ६६]

'श्रीकमला (श्रीलक्ष्मीजी) [पृ० ९३]

श्रीमनु एवं शतरूपाजी [पृ० ७४]

पृथु-अवतार [पृ० ५३]

श्रीरामजीके चरणचिह्न [पृ० ६१]

भक्तिमती शबरी [पृ० १०४]

श्रीसनकादि-अवतार [पृ० ६१]

भक्तमाल-रचयिता श्रीनाभादासजी [पृ० ३८]

श्रीनाभाजीके गुरु श्रीअग्रदासजी [पृ० ३७]

श्रीमत्स्यावतार [पृ० ४०]

श्रीकमठ (कच्छप)-अवतार [पृ० ४१]

श्रीवराहावतार [पृ० ४१]

श्रीनृसिंहावतार [पृ० ४२]

पुराणपुरुषोत्तम भगवान् श्रीविष्णु

श्रीहयग्रीव-अवतार [पृ० ५८]

श्रीरामावतार [पृ० ४७]

श्रीकृष्णावतार [पृ० ४९]
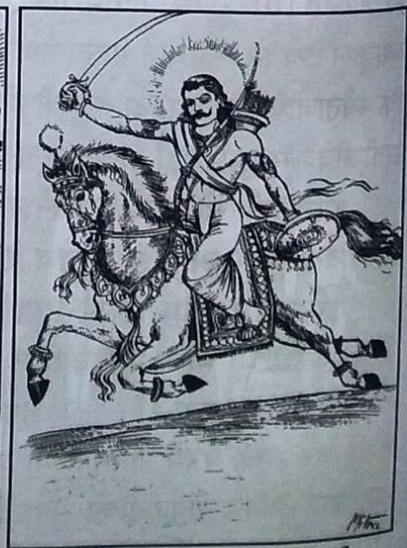
श्रीकल्कि-अवतार [पृ० ५२]

सिव भगवान ग्यान गुन रासी॥' तथा अपनी अत्यन्त प्रिय काशीपुरीमें मरनेवाले प्रत्येक प्राणीको मृत्यु-क्षणमें श्रीराम-नामका उपदेश देकर उसे मुक्त कर दिया करते हैं यथा—***'अहं भवन्नामगृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या। मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥'*** (अध्यात्मरामायण ६।१५।६२) अर्थात् मैं आपके नामके गुणोंसे कृतार्थ होकर काशीमें भवानीसहित निवास करता हूँ और मरणासन्न प्राणियोंकी मुक्तिके लिये उनके कानमें आपका मन्त्र राम-नामका उपदेश करता हूँ। श्रीरामजीके साथ श्रीशिवजीका सम्बन्ध त्रिविध है। यथा—***'सेवक स्वामि सखा सिय पी के'*** अर्थात् श्रीशिवजी श्रीसीतापति रामचन्द्रजीके सेवक भी हैं, सखा भी हैं और स्वामी भी हैं। इस भावका प्रकाश उस समय होता है, जब श्रीरामचन्द्रजीने सेतुबन्धनके समय शिवलिंगकी स्थापना की और उनका नाम रामेश्वर रखा। नामकरण होनेके पश्चात् परस्पर 'रामेश्वर' शब्दके अर्थपर विचार होने लगा। सर्वप्रथम श्रीरामजीने इसमें तत्पुरुष समास बताते हुए अर्थ किया—**रामस्य ईश्वरः** (रामके ईश्वर), इसपर श्रीशिवजी बोले—भगवान्! यहाँ बहुव्रीहि समास है अर्थात् इसका अर्थ—**रामः ईश्वरो यस्यासौ रामेश्वरः** (राम ही ईश्वर हैं जिनके वह रामेश्वर)—इस भाँति हैं। ब्रह्मादिक देवता हाथ जोड़कर बोले कि—महाराज! इसमें कर्मधारय समास है अर्थात् **'रामश्चासौ ईश्वरश्च'** अथवा **'यो रामः स ईश्वरः'** (जो राम वही ईश्वर) ऐसा अर्थ है। इस आख्यायिकासे तीनों भाव स्पष्ट हैं। 'रामेश्वर' शब्दमें बहुव्रीहि समाससे शिवजीका सेवक-भाव, तत्पुरुषसे स्वामी-भाव तथा कर्मधारयसे सख्य-भाव पाया जाता है। ऐसे अद्‌भुत भक्त हैं श्रीशिवजी!

श्रीभक्तमालजीके टीकाकार श्रीप्रियादासजी श्रीशिवजीकी भगवत्-भागवत-निष्ठाके सम्बन्धमें लिखते हैं—

द्वादश प्रसिद्ध भक्तराज कथा 'भागवत' अति सुखदाई, नाना विधि करि गाये हैं।
शिवजी की बात एक बहुधा न जानै कोऊ, सुनि रस सानै, हियौ भाव उरझाये हैं॥
'सीता' के वियोग 'राम' विकल विपिन देखि 'शंकर' निपुन 'सती' बचन सुनाये हैं।
'कैसे ये प्रवीन ईश कौतुक नवीन देखौ', मनेहूँ करत, अङ्ग वैसे ही बनाये हैं॥ २०॥

प्रसिद्ध बारह भक्तराजोंकी सुख देनेवाली कथाएँ श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें अनेक प्रकारसे गायी गयी हैं, परंतु शिवजीकी एक बातको प्रायः लोग नहीं जानते हैं। उस सुन्दर कथाको सुनकर हृदय भक्तिरसमें मग्न हो जाता है। ऐसे सुन्दर भावोंमें शंकरजीने अपने मनको उलझा रखा है। सीताके वियोगसे वनमें श्रीरामचन्द्रजीको व्याकुल देखकर सतीजीने भावप्रवीण शंकरजीसे कहा—यह कैसे सर्वज्ञ ईश्वर हैं? यह इनका नवीन कौतुक देखिये कि सीताजीके वियोगमें अति दुखी हो रहे हैं। तब शंकरजीने खूब समझाया कि यह तो प्रभुकी नरलीला है। परंतु सतीजीकी समझमें नहीं आया। मना करनेपर भी परीक्षा लेनेके लिये उन्होंने सीताजीका-सा रूप बनाया॥ २०॥

सीता ही सो रूप वेष लेशहू न फेर फार रामजी निहारि नेकु मन में न आई है।
तब फिर आयकै सुनाय दई शंकर को अति दुखपाय बहु बिधि समझाई है॥
इष्टको स्वरूप धर्‌यौ ताते तनु परिहर्‌यो पर्‌यो बड़ो शोच मति अति भरमाई है।
ऐसे प्रभु भाव पगे पोथिन में जगमगे लगे मोको प्यारे यह बात रीझि गाई है॥ २१॥

सतीजीका रूप और वेश-भूषा सीताजीके समान था, उसमें थोड़ा भी अन्तर नहीं था। श्रीरामजीने उसे देखा, पर उनके मनमें नाममात्र भी यह बात नहीं आयी कि ये सीताजी हैं, उनको सती ही माना। तब सतीजीने यह बात आकर शंकरजीको सुना दी। शंकरजीने अति दुःख पाकर सतीजीको अनेक प्रकारसे समझाया कि तुमने इष्टदेवी श्रीसीताजीका रूप धारण किया। इसलिये तुम्हारे इस शरीरमें अब मेरा पत्नीभाव नहीं रहा।

यह सुनकर सतीजीको बड़ा शोक हुआ और उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। सतीजीने वह शरीर त्याग दिया, पुनः हिमालयके घरमें जन्म लेकर वे शंकरजीको प्राप्त कर सकीं। शिवजी श्रीरामजीकी भक्ति-भावनामें इस प्रकार मग्न रहते हैं कि इतिहास-पुराणोंमें उनकी कथा जगमगा रही है। प्रियादासजी कहते हैं कि मुझे शिवजी अत्यन्त प्यारे लगे, इसलिये रीझकर मैंने इस कथाका गान किया है॥ २१॥

चले जात मग उभै खेरे शिव दीठि परे, करे परनाम, हिय भक्ति लागी प्यारी है।
पार्वती पूछें, किये कौन को ? जू! कहौ मोसौं, दीखत न जन कोऊ, तब सो उचारी है॥
वरष हजार दश बीते तहाँ भक्त भयो, नयो और ह्वै है दूजी ठौर बीते धारी है।
सुनिकै प्रभाव, हरिदासनि सों भाव बढ़्यो रढ़्यो कैसे जात चढ़्यो रङ्ग अति भारी है॥ २२॥

एक बार भगवान् शंकर देवी पार्वतीके साथ पृथ्वीपर विचर रहे थे, मार्गमें उजड़े ग्रामोंके दो टीले दिखायी पड़े। शंकरजीने नन्दीसे उतरकर दोनोंको प्रणाम किया; क्योंकि भक्ति आपको अत्यन्त प्यारी है। पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! आपने किसको प्रणाम किया, यहाँ कोई देवता या मुनि दिखायी नहीं पड़ रहे हैं, तब शिवजीने उत्तर दिया कि पहले टीलेपर दस हजार वर्षपूर्व एक प्रेमी भक्त निवास करते थे और यह जो दूसरा टीला है, इसपर दस हजार वर्ष बाद एक भक्त निवास करेंगे। इसीसे ये दोनों स्थान वन्दनीय हैं। भक्तोंका ऐसा प्रताप सुनकर पार्वतीजीके हृदयमें भक्तोंके प्रति अधिक अनुराग बढ़ गया, उसका ऐसा गहरा रंग चढ़ा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है॥ २२॥

(४) श्रीसनकादिजी

सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और सनत्सुजात—ये पाँचों ही ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। कहीं-कहीं सनत्कुमार और सनत्सुजातको एक मानकर चार ही कहा गया है। कहते हैं कि जब ब्रह्मासे पाँच पर्वोंवाली अविद्या दूर हो गयी तब ब्रह्माने अपनी शक्तिके साथ निर्मल अन्तःकरण होकर इनकी सृष्टि की। ब्राह्मीशक्तिने इन्हें सम्पूर्ण विद्या, उपासना-पद्धति और तत्त्वज्ञानका उपदेश किया। इन सबके अध्ययन, तपस्या, शील-स्वभाव एक-से ही है। इनमें शत्रु, मित्र तथा उदासीनोंके प्रति भेददृष्टि नहीं। सर्वदा पाँच वर्षकी अवस्थावाले बालकोंकी भाँति ही ये विचरते रहते हैं। संसारके द्वन्द्व इनका स्पर्श नहीं कर पाते। रातदिन भगवान् श्रीकृष्णके नामका जप किया करते हैं। **'हरिः शरणम्'** मन्त्र तो इनके श्वासोच्छ्वासके साथ-साथ चलता रहता है, इसीसे ये सदा बालकरूप रहते हैं। इन्हें भगवान्‌की लीलासुधा पान करनेमें इतना आनन्द आता है कि प्रायः शेषनागके पास जाकर पूछ-पूछकर उसका रसास्वादन करते रहते हैं। इनका एक क्षण भी भगवान्‌के चिन्तन बिना नहीं बीतता। ये सर्वदा ब्रह्मानन्दमें मग्न रहते हैं। इनके उपदेशोंसे अनेकों व्यक्तियोंका कल्याण-साधन हुआ है। इन्होंने शुकदेव और भीष्मको अध्यात्मविद्याका सदुपदेश प्रदान किया है। महाराज पृथुने जो कि भगवान्‌के एक अंशावतार हैं—इनसे ही भागवत-सदुपदेश ग्रहण किया। इन्होंने प्रलयके कारण पहले कल्पके भूले हुए ज्ञानका ऋषियोंके प्रति उपदेश किया।

महाभारतमें सनत्सुजातमुनिने धृतराष्ट्रको बहुत सुन्दर उपदेश दिये हैं। उद्योगपर्वका एक महत्त्वपूर्ण अंश ही सनत्सुजातीयके नामसे प्रसिद्ध है। इस सनत्सुजातीयपर भगवान् श्रीशंकराचार्यकृत एक संस्कृत भाष्य भी है।

कभी-कभी ये लोग स्वयं परस्पर भगवच्चर्चा किया करते थे। किसी एकको वक्ता बना लेते और दूसरे सब श्रोता बनते। इस प्रकार बड़े मर्मकी बातें होतीं। श्रीभागवतकी वेदस्तुति एक ऐसे ही अवसरपर कही गयी थी। श्रीसनन्दनजीको प्रवचनकार बनाकर बाकी लोग श्रोता बन गये। इस प्रकार एक बड़े जटिल प्रश्नका

उत्तर संसारको मिल गया कि वेदोंमें भगवान्‌का वर्णन किस प्रकार होता है। भगवान्‌से अतिरिक्त वस्तुका निषेध करते हुए वेद अन्तमें किस प्रकार भगवान्‌में परिसमाप्त होते हैं, इस उपदेशमें इस बातका अत्यन्त विशद वर्णन हुआ है।

भगवान्‌के भक्तों, जीवन्मुक्तों, सिद्ध सन्तोंमें संसारके कलुषित विकार काम-क्रोधादि होते ही नहीं, न हो सकते हैं। फिर भी कभी-कभी सन्तोंके जीवनमें भी भगवदिच्छासे लीलारूपमें यह बात देखी जाती है। देखनेवाले लोग अपने कलुषित हृदयके कारण भ्रमवश महात्माओंकी लीलाओंको न समझकर उनमें काम-क्रोधकी कल्पना कर बैठते हैं। उनकी इन लीलाओंके द्वारा जगत्‌की हानि न होकर लाभ ही होता है। इनके सम्बन्धमें भी पुराणोंमें एक ऐसे ही प्रसंगका वर्णन आता है।

एक बार इन लोगोंने वैकुण्ठकी यात्रा की। इन्हें पाँच वर्षके नग्न बालकके रूपमें देखकर वहाँके द्वारपालों (जय-विजय) ने रोक दिया। इसपर इन्होंने डाँटते हुए कहा—

'भगवान्‌के नित्यधाम—सत्त्वके साम्राज्यमें यह विषमता उचित नहीं है। तुम दोनोंके मनमें कुछ गर्व और कपट अवश्य आ गया है, नहीं तो भगवान्‌के सबके लिये खुले हुए समधाममें भला यह कैसे हो सकता है? तुम हमपर शंका कर रहे हो। इस एकरस धाममें तुम दोनोंने पेटके कारण होनेवाले सांसारिक भेदभावको स्थान दिया है। इसलिये शीघ्र ही यहाँसे गिर जाओ।'

यद्यपि सन्तोंमें इस प्रकारका आवेश होना असम्भव है, फिर भी भगवान्‌की ऐसी ही इच्छा थी। वे इन्हीं मुनियोंको निमित्त बनाकर जगत्‌में आना चाहते थे। कहाँ तो उनका स्थान और दर्शन इन मुनियोंके लिये भी अगम्य था और कहाँ वे बन्दर-भालू आदि के लिये भी सुलभ हो गये। भगवान् गाँवके ग्वालोंके बीचतकमें आये। इन मुनियोंको निमित्त बनाकर अपनेको सुलभ कर दिया।

भगवान्‌ने स्वयं आकर इनकी स्तुति की, ब्राह्मणोंकी महिमा गायी, प्रसन्नता प्रकट की, तब इन्होंने मुक्तस्वरसे कहा, 'प्रभो! हमें तो उचित-अनुचित कुछ जान नहीं पड़ता। इस अपराधके बदले आपकी जो इच्छा हो वही दण्ड दे दो। हमें सहर्ष शिरोधार्य है।' भगवान्‌ने मुसकराते हुए कहा, 'तुम्हारा कोई दोष नहीं। यह तो मेरी ही इच्छा थी। मैंने पहले ही सोच रखा था।' भगवान्‌की प्रेमभरी गम्भीरवाणी सुनकर सब-के-सब भगवान्‌की प्रदक्षिणा, नमस्कार करके आज्ञा पाकर उनके गुण गाते हुए स्वच्छन्द विचरण करने लगे।

यद्यपि ये सनकादिक सब-के-सब नित्यसिद्ध और निरन्तर परमार्थनिष्ठ हैं तथापि संसारमें गुरुशिष्य-परम्पराके स्थापनके लिये क्रमशः बड़े भाइयोंको छोटोंने गुरुके रूपमें माना था। विधिवत् उनसे दीक्षा लेकर श्रवण-मननादि किया। आज भी वे कहीं गुप्तरूपसे विचरण करते होंगे। सम्भव है कहीं हमारे पास ही हों परंतु हमारा ऐसा सौभाग्य कहाँ है कि उनके दर्शनसे अपना जन्म सफल कर सकें। उनकी कृपा ही वाञ्छनीय है।

(५) श्रीकपिलदेवजी

'सिद्धानां कपिलो मुनिः'

ब्रह्माजीने सर्गके आदिमें सृष्टिविस्तारके उद्देश्यसे कई पुत्र उत्पन्न किये। इनमेंसे एक कर्दम नामके प्रजापति भी थे। इन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे सन्तान उत्पन्न करनेके हेतु सरस्वतीनदीके तटपर दस हजार वर्षतक तप किया; इसके अनन्तर वे समाधिसहित तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधानरूप क्रियायोगके द्वारा शरणागतवत्सल भगवान्‌की भक्तिसहित उपासना करने लगे। उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें दर्शन

दिया। कर्दम ऋषि भगवान्‌का योगिजनदुर्लभ दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये और उन्हें साष्टांग प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि मुझे अपने समान स्वभाववाली और चतुर्वर्गकी प्राप्ति करानेवाली सहधर्मिणी प्रदान कीजिये। भगवान्‌ने कहा—'हे प्रजापते! ब्रह्माजीका पुत्र स्वायम्भुव मनु अपनी पत्नीके साथ परसों यहाँ आयेगा तथा अपनी देवहूति नामक कन्याको तुम्हारे अर्पण करेगा। उसके द्वारा तुम्हें नौ कन्याएँ प्राप्त होंगी। मैं भी तुम्हारे प्रेमसे आकृष्ट होकर अपने अंशरूप कलाके द्वारा तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपमें प्रकट होऊँगा और सांख्यशास्त्ररूप संहिताकी रचना करूँगा।' यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

भगवान्‌के कथनानुसार तीसरे दिन स्वायम्भुव मनु अपनी पत्नीके सहित कन्याको साथमें लेकर कर्दमके आश्रममें पहुँचे और बड़े आग्रह और विनयके साथ वे ऋषिको अपनी कन्या अर्पित कर चले गये। इधर देवहूति माता-पिताके लौट जानेपर पतिकी अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगी। उसने विषयभोगकी इच्छा तथा कपट, द्वेष, लोभ, निषिद्ध आचरण और प्रमाद आदि दोषोंको त्यागकर शौच, इन्द्रियनिग्रह आदि गुणोंसे अपने तेजस्वी पतिको सन्तुष्ट किया। काल पाकर उन्हें नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। अब तो कर्दम ऋषि अपने पिता ब्रह्माजीकी आज्ञा पूरी हुई जानकर संन्यासधर्ममें दीक्षित होनेका विचार करने लगे। उनके इस विचारको जानकर देवहूति उनसे हाथ जोड़कर बोली—'भगवन्! आप अपनी आत्माका कल्याण करनेके लिये घर छोड़कर वनमें जाना चाहते हैं तो जाइये, मैं आपके मार्गमें बाधक होना नहीं चाहती। किंतु मेरी एक छोटी-सी प्रार्थना है, उसे पूरी करके आपको जानेका विचार करना चाहिये। वह यह है कि आपके वन चले जानेपर मेरा शोक दूर करनेके लिये मुझे एक ब्रह्मज्ञानी पुत्र चाहिये। केवल कन्या उत्पन्न करके आप पितृ-ऋणसे मुक्त नहीं हुए। अतः आप कुछ दिन और घरमें रहिये और पुत्र उत्पन्न होनेके बाद चले जाइये। मैंने विषयोंमें लिप्त रहकर अबतककी आयु तो व्यर्थ खो दी, परंतु शेष जीवन मेरा भगवान्‌के भजनमें ही बीते ऐसी मेरी इच्छा है। आपको ब्रह्मज्ञानी न जानकर मैंने अबतक आपसे ग्राम्य सुखोंकी ही कामना की। अब आप कृपा करके मुझे पुत्रकी प्राप्ति कराकर इस संसाररूप बन्धनसे छूटनेमें सहायता दीजिये। उसके इन विनय एवं वैराग्ययुक्त वचनोंको सुनकर ऋषिको भगवान्‌के वचनोंका स्मरण हो आया। वे बोले—'हे राजपुत्रि! तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। तुम्हारे उदरमें भगवान् जगदीश्वर शीघ्र ही अवतार धारण करेंगे और तुम्हें ब्रह्मज्ञानका उपदेशकर तुम्हारे हृदयकी अहंकाररूप ग्रन्थिका छेदन करेंगे।

देवहूति भी प्रजापतिके वचनोंमें पूर्ण विश्वासकर भगवान् श्रीहरिकी प्रेमपूर्वक आराधना करने लगी। समय पाकर उसके उदरसे भगवान् मधुसूदन प्रकट हुए और चारों दिशाओंमें जयजयकारकी ध्वनि होने लगी। उस समय मरीचि आदि ऋषियोंसहित ब्रह्माजी कर्दम ऋषिके आश्रममें पहुँचे। उन्होंने कर्दम-देवहूतिको उनके पुत्रका माहात्म्य बतलाया और कहा कि साक्षात् पूर्णपुरुष ही तुम्हारे यहाँ अवतीर्ण हुए हैं। इनके केशकलाप सुवर्णके समान कपिलवर्ण होनेके कारण ये जगत्‌में कपिल नामसे विख्यात होंगे। ये सिद्ध-मुनियोंमें अग्रगण्य होंगे और सांख्यशास्त्रका प्रचार करेंगे।' यों कहकर ब्रह्माजी सत्यलोकको चले गये। उनके चले जानेके बाद कर्दम ऋषिने अपने यहाँ पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए भगवान् कपिलदेवकी अनेक प्रकारसे स्तुति की और उनसे संन्यासधर्मको स्वीकार करनेकी आज्ञा माँगी। भगवान् बोले—'हे प्रजापते! मुमुक्षुओंको आत्मज्ञान प्राप्त करानेमें सहायक प्रकृति, पुरुष आदि तत्त्वोंका निरूपण करनेके लिये ही मैं इस समय धराधामपर अवतीर्ण हुआ हूँ। तुम अब सब प्रकारके ऋणानुबन्धोंसे मुक्त हो गये हो, अतः तुम संन्यास ग्रहण कर सकते हो, यद्यपि तुम्हें घरमें भी मुक्तिकी प्राप्ति कठिन नहीं है। परंतु तुम मुझे बराबर स्मरण करते रहना और अपने

समस्त कर्मोंको मुझे अर्पणकर मोक्षकी प्राप्तिके निमित्त मेरी उपासनामें लगे रहना। यद्यपि यह सूक्ष्म आत्मज्ञानका मार्ग बहुत पहलेसे चला आ रहा है, तथापि बहुत काल बीत जानेसे वह लुप्त-सा हो गया है, अतः उसका पुनः प्रचार करनेके निमित्त ही मैं पृथ्वीपर प्रकट हुआ हूँ। सकल प्राणियोंके अन्तःकरणमें रहनेवाले मुझ स्वयंप्रकाश परमात्माको अपने देहस्थित आत्मामें देखकर तुम शोकसे छूट जाओगे और मोक्षसुखको प्राप्त करोगे। मैं देवहूति माताको संचित और क्रियमाण आदि सब प्रकारके कर्मोंकी वासनाएँ मनसे दूर करनेवाली अध्यात्मविद्या कहूँगा, जिसके प्रभावसे यह देवहूति संसारभयको तर जायगी और मोक्षसुखको प्राप्त करेगी।'

भगवान् कपिलदेवके इन वचनोंको सुनकर कर्दम ऋषि परम प्रसन्न हुए और भगवान्‌की प्रदक्षिणाकर वनको चले गये। वे सकल संगोंको त्यागकर अहिंसाव्रतका पालन करते हुए पृथ्वीपर विचरने लगे। उन्होंने अपने उत्कट भक्तियोगके द्वारा अन्तर्यामी भगवान् वासुदेवके चरणोंमें मन लगाकर उत्तम भगवद्भक्तोंको प्राप्त होनेवाली भागवती गतिको प्राप्त किया।

महामुनि भगवान् कपिलदेव पिता कर्दम ऋषिके वनमें चले जानेपर माताका प्रिय करनेकी इच्छासे कुछ दिन अपने पिताके आश्रममें ही रहे। एक दिन ब्रह्माजीके कथनको स्मरणकर देवहूति आसनपर बैठे हुए, वास्तवमें कर्मरहित किंतु मुमुक्षुओंको तत्त्वमार्ग दिखानेवाले अपने पुत्रसे कहने लगी—'हे प्रभो! मैं इन दुर्निवार इन्द्रियोंकी तृप्तिके निमित्त विषयोंकी अभिलाषासे अत्यन्त श्रान्त हो रही हूँ। हे देव! आप मेरे इस महामोहको दूर करिये। आप शरणागतोंके रक्षक और भक्तोंके संसाररूप वृक्षको छेदन करनेमें कुठारके समान हैं।' माताके इन वचनोंको सुनकर कपिलदेव मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और मुसकराते हुए बोले—'हे माता! इस आत्माके बन्धन और मुक्तिका कारण चित्त ही है, चित्तके सिवा कोई दूसरा नहीं। यह चित्त शब्दादि विषयोंमें आसक्त होनेपर बन्धनका कारण होता है और वही ईश्वरके प्रति अनुरक्त होनेपर मुक्तिका कारण बन जाता है। इसी प्रकार दुष्ट पुरुषोंका संग जीवात्माको बाँधनेवाली दृढ़ फाँसी है और सत्पुरुषोंके संगको शास्त्रोंमें मोक्षका द्वार कहा गया है। अतः हे जननि! तुम्हें सत्पुरुषोंका ही संग करना चाहिये। साधुओंके सत्संगसे ही मेरे प्रभावका यथार्थ ज्ञान करानेवाली और अन्तःकरणको सुख देनेवाली कथाएँ सुननेको मिलती हैं। जिनके श्रवणसे भगवान्‌में श्रद्धा, प्रीति और भक्ति क्रमशः उत्पन्न होती है। उस भक्तिसे ऐहिक तथा पारलौकिक सुखोंके प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसम्पन्न पुरुष आत्मसाधनके उद्योगमें तत्पर होकर योगादिके द्वारा अन्तःकरणको स्वाधीन करनेका प्रयत्न करता है और शब्दादि विषयोंके सेवनको त्यागकर वैराग्यसे बढ़े हुए ज्ञान, अष्टांगयोग और भक्तिके द्वारा इसी देहमें मुझ सर्वान्तर्यामी परमात्माको प्राप्त कर लेता है।'

इसके अनन्तर देवहूतिके प्रश्न करनेपर भगवान् श्रीकपिलदेवने भक्तिके लक्षणोंका वर्णन किया और फिर सांख्यशास्त्रकी रीतिसे पदार्थोंका वर्णन करते हुए प्रकृति-पुरुषके विवेकद्वारा मोक्षका वर्णन किया। इसके अनन्तर अष्टांगयोगसे स्वरूपकी उपलब्धि किस प्रकार होती है—यह बतलाते हुए भक्तियोगके अनेक प्रकार बतलाये और साथ ही संसारके दुःखदायी स्वरूपका चित्रण किया। प्रसंगतः कामीजनोंकी कैसी गति होती है—यह बतलाते हुए मनुष्ययोनिका महत्त्व बतलाया और यह भी बतलाया कि मनुष्ययोनि पाप और पुण्यके सम्मिश्रणसे प्राप्त होती है।

अपने पुत्रके उपदेशको सुनकर देवहूतिके अज्ञानका पर्दा हट गया और वह उनके प्रभावको समझकर उनकी भगवद्बुद्धिसे स्तुति करने लगी। भगवान् कपिल उनकी स्तुतिको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और स्नेह-

गद्गद वाणीसे इस प्रकार बोले—'हे माता! मेरे कहे हुए इस मार्गसे यदि आप चलेंगी तो बहुत ही शीघ्र जीवन्मुक्तिरूप उत्तम फलको प्राप्त करेंगी। हे जननि! ब्रह्मज्ञानियोंके द्वारा सेवनीय मेरे इस अनुशासनपर आप विश्वास रखें, इस प्रकार बर्ताव करनेसे आप संसारसे छूटकर मेरे जन्ममरणरहित स्वरूपको प्राप्त होंगी। मेरे इस मतको न जाननेवाले पुरुष मृत्युरूप संसारमें बार-बार गिरते हैं।' यों कहकर महामुनि कपिलजी मातासे विदा लेकर ईशानदिशाकी ओर चल दिये। देवहूति भी अपने पुत्रके बताये हुए योगमार्गसे अपने चित्तको एकाग्र करके अपने पतिके आश्रममें समाधिके द्वारा समय व्यतीत करने लगीं और शीघ्र ही सर्वश्रेष्ठ, अन्तर्यामी, नित्यमुक्त एवं ब्रह्मरूप भगवान्‌के साथ एकताको प्राप्त हो गयीं।

(६) श्रीमनुजी

सृष्टिके प्रारम्भमें जब ब्रह्माने सनकादि पुत्रोंको उत्पन्न किया और वे निवृत्तिपरायण हो गये तब इन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। इस क्षोभके कारण ब्रह्मा रजोगुण और तमोगुणसे अभिभूत हो गये। इससे ब्रह्माके दाहिने अंगसे स्वायम्भुव मनुकी और बायें भागसे शतरूपाकी उत्पत्ति हुई। स्वायम्भुव मनुने जब तपस्याके द्वारा शक्ति संचय करके सृष्टिकी अभिवृद्धि करनेकी आज्ञा प्राप्त की तब उन्होंने अपने पिता ब्रह्माके आदेशानुसार सकलकारणस्वरूपिणी आद्याशक्तिकी आराधना की। इनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवतीने वर-याचनाकी प्रेरणा की। स्वायम्भुव मनुने भगवतीसे बड़े विनयपूर्वक कहा—'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो ऐसी कृपा कीजिये, जिससे प्रजाकी सृष्टिका कार्य निर्विघ्न चलता रहे।' देवीने 'तथास्तु' कहा और अन्तर्धान हो गयीं। इसके बाद मनुने ब्रह्मासे एक उपयुक्त स्थानके लिये प्रार्थना की। ब्रह्माने मनुको भगवान् विष्णुकी शरण लेनेका उपदेश किया। इसी समय भगवान् वाराहरूप धारण करके ब्रह्माकी नासिकासे निकल पड़े और थोड़े ही समयमें बड़ा विशाल रूप धारण करके भीषण गर्जना करने लगे। उस समय सभी देव-दानव, ऋषि-मुनि उनकी महिमाका गायन करने लगे। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने जलमग्न पृथ्वीका उद्धार और उसकी स्थापना की। स्वायम्भुव मनु पृथ्वीपर रहकर सृष्टिकार्य करने लगे। पहले उनके प्रियव्रत, उत्तानपाद नामके दो तेजस्वी पुत्र एवं आकूति, देवहूति और प्रसूति नामकी तीन कन्याएँ हुईं। उत्तानपादसे ध्रुव-जैसे भगवद्भक्त प्रकट हुए और इनकी देवहूति नामकी कन्यासे स्वयं भगवान्‌ने कपिलरूपमें अवतार ग्रहण किया। भगवान्‌के आज्ञानुसार राज्य करते हुए इन्होंने भृगु आदि ऋषियोंको व्याज बनाकर अनेक प्रकारके धर्मों और नीतियोंका प्रचार किया तथा सम्पूर्ण मानवजातिके लिये एक ऐसी सुन्दर व्यवस्था की, जिसके द्वारा अपने-अपने अधिकारानुसार सब भगवान्‌को प्राप्त कर सकें। अन्तमें इनके मनमें यह बात आयी कि घरमें रहकर विषयोंको भोगते-भोगते बुढ़ापा आ गया, किंतु इन विषयोंसे वैराग्य नहीं हुआ। भगवान्‌के भजन बिना जीवनका यह अमूल्य समय यों ही बीत गया, यह सोचकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। यद्यपि पुत्रोंने उन्हें घरमें रहकर राज्य करते रहनेका बड़ा आग्रह किया, फिर भी उनके विरक्त हृदयने पुत्रोंकी एक भी न मानी, अन्ततः पुत्रोंको राज्य देकर वे अपनी पत्नी शतरूपाके साथ घरसे निकल पड़े। नैमिषारण्यमें जाकर इन्होंने ऋषि-मुनियोंका सत्संग प्राप्त करके समस्त तीर्थोंमें स्नान किया, देवताओंके दर्शन किये और फिर वल्कल वस्त्र पहनकर हविष्य भोजन करते हुए शरीरकी और संसारकी परवाह छोड़कर द्वादशाक्षर मन्त्रका सप्रेम जप करते हुए भगवान्‌के चिन्तनमें लग गये। उनके मनमें एकमात्र यही अभिलाषा थी कि इन्हीं आँखोंसे भगवान्‌के दर्शन हों। इस तरह बड़ी कठोर तपस्या करते-करते हजारों वर्ष बीत गये। इस बीचमें कई बार ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनके पास आये और इन्हें वर देनेके बड़े-बड़े प्रलोभन दिये; परंतु ये तनिक भी विचलित नहीं हुए। शरीर सूखकर काँटा हो गया, केवल हड्डी-ही-हड्डी अवशेष रह गयीं। परंतु इनके मनमें तनिक भी व्यथाका

अनुभव नहीं हुआ। महाराज स्वायम्भुव मनु और शतरूपाकी इस अनन्य तपस्याको देखकर बड़ी ही गम्भीर और भगवत्कृपापूर्ण आकाशवाणी हुई कि तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो। भगवान्‌की यह अमृतभरी वाणी सुनकर उनका शरीर सर्वांगसुन्दर और हृष्ट-पुष्ट हो गया। सारा शरीर पुलकित हो गया। हृदय प्रेमसे भर गया और उन्होंने दण्डवत् करके भगवान्‌से प्रार्थना की—'प्रभो! आप बड़े भक्तवत्सल हैं; ब्रह्मा, शंकर और विष्णु भी आपकी चरणधूलिकी वन्दना करते हैं। यदि आप मुझपर सचमुच प्रसन्न हैं' तो आपका वह स्वरूप जो शिवके हृदयमें निवास करता है, काकभुशुण्डिजी जिसका ध्यान करते हैं और वेदोंमें जिसे सगुण होते हुए भी निर्गुण और निर्गुण होते हुए भी सगुण कहा गया है, वही स्वरूप हम अपनी इन्हीं आँखोंसे देखें। उनकी प्रेमसे भरी बात भगवान्‌को बड़ी प्रिय लगी और भगवान् उनके सामने प्रकट हो गये। दम्पतीका ध्यान टूटा और उन्होंने भगवान् श्रीरामकी ओर देखा। भला, भगवान्‌की उस रूपमाधुरीका कोई क्या वर्णन कर सकता है! आदिशक्ति भगवती सीता और पुरुषोत्तम भगवान् रामकी अनूप रूपराशिको देखकर उनकी आँखें निर्निमेष हो गयीं। उन्हें तृप्ति होती ही न थी। आनन्दातिरेकसे शरीरकी सुध-बुध जाती रही और वे बिना सहारेकी लकड़ीकी भाँति उनके चरणोंपर गिर पड़े। भगवान्‌ने उन्हें बलात् उठाकर उनके सिरपर अपने करकमल फेरकर अपने हृदयसे लगा लिया। जब भगवान्‌ने उन्हें धैर्य धारण कराकर वर माँगनेकी प्रेरणा की तो पहले उन्हें बड़ा संकोच हुआ, परंतु भगवान्‌के बहुत ढाढ़स देनेपर और यह कहनेपर कि तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है, वे बोले—'मैं तुम्हारे ही सरीखा पुत्र चाहता हूँ।' भगवान्‌ने कहा—'मेरे सरीखा तो मैं ही हूँ, अतः मैं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा।'

इसके बाद भगवान्‌ने शतरूपापर अपनी कृपादृष्टि डाली और उनसे वर माँगनेकी प्रेरणा की। शतरूपाने वह वर तो माँगा ही जो उनके पतिदेवने माँगा था, साथ ही भक्त-जीवनकी प्रार्थना की। भगवान्‌ने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'इतना ही नहीं, तुम्हारे मनमें जो-जो रुचियाँ हैं, सब पूर्ण होंगी; इसमें सन्देह नहीं।' इसके पश्चात् महाराज मनुने ऐश्वर्यभक्तिके स्थानपर वात्सल्यरति—पुत्रविषयक प्रेमकी याचना की और कहा कि संसारके लोग चाहे मुझे मूर्ख ही क्यों न समझें, आप कृपा करके यह वर दीजिये कि आपके वियोगमें मेरा जीवन रहे ही नहीं। इसके बाद स्वायम्भुव मनु दशरथ और उनकी पत्नी शतरूपा कौसल्या हुईं। भगवान्‌ने इनके पुत्ररूपसे जन्म ग्रहण किया। इन पुण्यश्लोक आदिराज स्वायम्भुव मनु एवं उनकी पत्नी शतरूपाका चरित्र बड़ा ही विस्तृत है, इसका पूर्ण अनुशीलन तो इतिहास-पुराणोंमें ही हो सकता है। यहाँ तो केवल उनका स्मरणमात्र कर लिया गया है। श्रीरामचरितमानस-बालकाण्डमें इनके तपका प्रसंग वर्णित है।

(७) श्रीनरहरिदास (श्रीप्रह्लादजी)

स उत्तमश्लोकपदारविन्दयो-
र्निषेवयाकिञ्चनसङ्गलब्धया।
तन्वन् परां निर्वृतिमात्मनो मुहु-
र्दुःसङ्गदीनान्यमनःशमं व्यधात्॥

(श्रीमद्भा० ७।४।४२)

दैत्यराज हिरण्यकशिपुके चार पुत्र थे। उनमें प्रह्लाद अवस्थामें सबसे छोटे थे, किंतु भगवद्भक्ति तथा अन्य गुणोंमें सबसे बड़े हुए। संसारमें जितने भक्त हो गये हैं, प्रह्लादजी उन सबके मुकुटमणि हैं। वे बाल्यकालसे ही भगवान्‌का नामकीर्तन और गुणकीर्तन करते-करते अपने आपको भूल जाते थे। कभी वे प्रेममें बेसुध होकर गिर पड़ते, कभी कीर्तन करते-करते नाचते और कभी भगवन्नामोंका उच्चारण करते हुए

ढाढ़ मारकर रोने लगते।

इनके पिता असुरोंके राजा थे। देवताओंसे सदा उनकी खटपट रहती थी। एक बार देवताओंको पराजित करनेकी नीयतसे इनके पिता घोर तप करने लगे। वे भगवान्‌की सकाम आराधनामें इतने निमग्न हो गये कि उन्हें अपने शरीरतकका होश नहीं रहा। देवराज इन्द्रने अवसर पाकर असुरोंके ऊपर चढ़ाई कर दी, उन दिनों प्रह्लाद गर्भमें थे। इन्द्रने असुरोंको मार भगाया, उनकी पुरीको लूट लिया और प्रह्लादकी माताको पकड़कर ले चले। वह बेचारी गर्भवती दीना अबला कुररीकी भाँति रोती जाती थी। रास्तेमें दयालु देवर्षि नारद मिले। उन्होंने इन्द्रको बहुत डाँटा और कहा—'तुम इसे क्यों पकड़े ले जाते हो?' इन्द्रने कहा—'भगवन्! मैं स्त्रीवध नहीं करूँगा। इसके पेटमें हिरण्यकशिपुका जो गर्भ है, उसके उत्पन्न होनेपर मैं उसे मारकर इसे छोड़ दूँगा।' देवर्षिने अपनी दिव्य दृष्टिसे देखकर कहा—'अरे, इसके गर्भमें परम भागवत पुत्र है, इससे तुम्हें कोई भय नहीं, इसे छोड़ जाओ।' देवर्षिकी आज्ञा पाकर इन्द्रने उसे छोड़ दिया। देवर्षि उसे अपने आश्रमपर ले गये। यहाँ लाकर वे प्रह्लादकी माताका मन बहलानेके लिये भाँति-भाँतिके भगवत्-चरित्रोंको कहा करते थे। गर्भमें स्थित प्रह्लादजीने माताके गर्भमें ही भक्तिका समस्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। पीछे हिरण्यकशिपुके आनेपर प्रह्लादकी माता घर आ गयीं और वहीं प्रह्लादजीका जन्म हुआ। ये जन्मसे ही भक्तिकी बातें किया करते थे, बच्चोंमें खेलते-खेलते ये उन्हें भगवन्नाम-कीर्तनका उपदेश किया करते और स्वयं सबसे कीर्तन कराते थे। पाँच वर्षकी अवस्था होनेपर हिरण्यकशिपुने अपने गुरुके पुत्र शण्ड और अमर्कके यहाँ इन्हें पढ़ने भेजा। किंतु ये तो समस्त शास्त्र माताके पेटमें ही पढ़ चुके थे। गुरु बताते थे कुछ, ये पढ़ते थे प्रभु-प्रेमकी पाटी। एक दिन पिताने पूछा—'तुमने जो सबसे अच्छी बात अबतक पढ़ी हो, उसे बताओ।' प्रह्लादजी बोले—'सबसे अच्छी बात तो यही है कि इन सब प्रपंचोंको छोड़कर भगवद्भक्तिमें शीघ्र-से-शीघ्र लग जाना चाहिये।' अपने पुत्रके मुँहसे भगवद्भक्तिकी बात सुनकर हिरण्यकशिपु बहुत क्रोधित हुआ। पुत्रको मारने दौड़ा, गुरुपुत्रोंको भला-बुरा कहा। जैसे-तैसे समझा-बुझाकर लोगोंने प्रह्लादको छुड़ा दिया। हिरण्यकशिपुने यह कहकर कि 'अब कभी मेरे शत्रु विष्णुका नाम मत लेना' पुत्रको छोड़ दिया।

प्रह्लादजी भला हरिनाम कब छोड़नेवाले थे, वे नये उत्साहके साथ भगवत्-कीर्तनमें तल्लीन हो गये। अपने सहपाठियोंसे भी कहते—'सच्चा पढ़ना तो भगवान्‌की शरण जाना ही है। सांसारिक पदार्थोंके नाम पढ़ना अज्ञानकी ओर बढ़ना है। वे दिन-रात भगवान्‌के नामों और गुणोंके कीर्तनमें ही निमग्न रहते। इनके पिताने जब देखा कि यह किसी प्रकार भी भगवद्भक्ति नहीं छोड़ता तो उसने इन्हें सूलीपर चढ़वाया, मदमत्त हाथियोंके नीचे डलवाया, अथाह जलमें गलेमें पत्थर डालकर डुबाया, हलाहल विषका प्याला पिलाया, धधकती हुई अग्निमें जलवाया, पर्वत-शिखरसे गिराया, किंतु इनका बाल भी बाँका नहीं हुआ। काँटोंकी सूली फूलोंकी सेजके समान सुखद हो गयी, हाथियोंने इन्हें उठाकर पीठपर बिठा लिया, जलके ऊपर पाषाण तैरने लगे। विष अमृत बन गया, अग्नि जलकी भाँति शीतल हो गयी और इन्हें जलानेकी इच्छासे ईंधन जलाकर बैठनेवाली होलिका स्वयं जलकर भस्म हो गयी। पर्वत-शिखरसे ये हँसते-हँसते नीचे आ गये। सारांश यह कि कोई यातना इन्हें दुखी न बना सकी। शण्डामर्क फिर इन्हें पाठशाला ले गये, वहाँ प्रह्लादने फिर बड़े जोरसे अपना वही काम शुरू कर दिया। लड़के सब हरिकीर्तन करने लगे। शण्डामर्कने गुस्सेमें आकर कहा—'या तो हमारी बात मान जाओ, नहीं तो कृत्या उत्पन्न करके हम तुम्हें भस्म कर देंगे।' विश्वासी भगवद्भक्त प्रह्लाद क्यों डरने लगे! उन्होंने कहा—'गुरुजी! कौन किसको मार सकता है और कौन

किसको बचा सकता है? सब भगवान्‌की लीला है।' इसपर क्रुद्ध होकर शण्डामर्कने महान् विकराल ज्वालामयी कृत्याको उत्पन्न किया। कृत्याने प्रह्लादके हृदयमें शूल मारा, भक्तभयहारी भगवान्‌की शक्तिसे सुरक्षित प्रह्लादकी छातीपर लगते ही शूल टूक-टूक हो गया। कृत्या परास्त होकर लौटी और दोनों ब्राह्मणोंको मारकर स्वयं भी नष्ट हो गयी। अपने कारण गुरुओंकी मृत्यु होते देखकर प्रह्लादका सन्त-हृदय पिघल गया। उन्होंने कातर कण्ठसे भगवान्‌से बार-बार प्रार्थना की और कहा कि मुझे मारनेवाले, जहर देनेवाले, सूलीपर चढ़ानेवाले, आगमें जलानेवाले, पहाड़से गिरानेवाले, समुद्रमें फेंकनेवाले मनुष्योंसे, डँसनेवाले सर्पोंसे, पैरोंतले रौंदनेवाले हाथियोंसे यदि मेरे मनमें कुछ भी द्वेष न हो, मैं सबको अपना आत्मा और मित्र ही मानता होऊँ, किसीके भी अनिष्टकी जरा भी मेरी इच्छा न हो तो ये मेरे दोनों गुरु जी उठें।'

प्रह्लादकी प्रार्थनासे शण्डामर्क जी उठे और प्रह्लादको आशीर्वाद देने लगे, क्षमाशील प्रह्लादकी महिमा अनन्त कालके लिये सुप्रतिष्ठित हो गयी! सन्तकी यही तो विशेषता है, वह बुरा करनेवालेका भी भला करता है—

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

जब किसी तरह भी ये न मरे तब तो इनके पिताको बड़ा क्रोध आया। एक खम्भेसे बाँधकर हाथमें खड्ग लेकर वह इन्हें मारनेको तैयार हुआ और बोला—'अब बता, तेरे भगवान् कहाँ हैं?' प्रह्लादने निर्भीकतासे कहा—'भगवान् सर्वत्र हैं, मुझमें, तुममें, खड्ग और खम्भेमें—सर्वत्र वे श्रीहरि व्याप्त हैं।' हिरण्यकशिपुने कहा—'तब फिर इस खम्भेमें क्यों नहीं दीखते?' इतना कहना था कि भगवान् आधे मनुष्य और आधे सिंहके रूपमें उस खम्भेमेंसे प्रकट हुए। उस अद्भुत नृसिंहरूपको देखकर हिरण्यकशिपु डर गया, भगवान्‌ने जल्दीसे उसे घुटनोंपर रखकर उसका पेट फाड़ दिया। सब देवता प्रसन्न हुए। सभीने भगवान्‌की स्तुति की। भगवान्‌ने प्रेमपूर्वक प्रह्लादको गोदमें बिठाया, उसे खूब प्यार किया और वरदान माँगनेको कहा। प्रह्लादने कहा—'प्रभो! मेरे पिताने आपसे वैर किया था, इनकी दुर्गति न हो।' भगवान् हँसे और बोले—'भैया, जिस कुलमें तुम्हारे-जैसे भगवद्भक्त हुए हैं, उस कुलकी सात पीढ़ी पहली, सात आगेकी और सात मातृपक्षकी, इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियाँ तो स्वतः तर गयीं। तुम्हारे पिता भी तर गये।' अन्तमें प्रह्लादने भगवान्‌में अहैतुकी भक्तिका वरदान माँगा। भगवान् ऐसा वरदान देकर और प्रह्लादका राजतिलक करके अन्तर्धान हो गये। प्रह्लाद बहुत कालतक असुरोंके सिंहासनपर राज्य करते रहे। अन्तमें अपने पुत्र विरोचनको राज्य देकर वे भगवान्‌की भक्तिमें तल्लीन हो गये। इसीलिये प्रह्लाद प्रातःस्मरणीय भक्तोंमें सर्वप्रथम स्मरण किये जाते हैं।

(८) श्रीजनकजी

निमिवंशमें जितने भी राजा हुए सभी 'जनक' कहलाते थे, ब्रह्मज्ञानी होनेसे इन सबोंकी विदेहसंज्ञा भी थी। किंतु जनकके नामसे अधिक प्रसिद्ध सीताजीके पिता ही हुए हैं। उनका यथार्थ नाम सीरध्वज था। 'सीरध्वज' नामका एक कारण है। 'सीर' कहते हैं हलकी नोकको। एक बार मिथिला देशमें बड़ा अकाल पड़ा, विद्वानोंने निर्णय किया कि महाराज जनक स्वयं हलसे जमीन जोतकर यज्ञ करें तो वर्षा हो। महाराज यज्ञके लिये जमीन जोत रहे थे कि हलकी नोक लगनेसे पृथ्वीमेंसे एक कन्या निकल आयी। वही जगज्जननी महारानी सीताजी हुईं। महाराज जनक उन्हें अपने घर ले आये और उन्हींको अपनी सगी पुत्री मानकर लालन-पालन करने लगे।

ये पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे, 'मैं-मेरे' के चक्रसे सर्वथा छूटे हुए थे। वे सदा ब्रह्मरूपमें स्थित रहते हुए ही

प्रजापालनका कार्य समुचितरूपसे करते रहते थे। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि इनके पास ज्ञान-चर्चा करने तथा ब्रह्मज्ञान सीखने आते थे, ये इतने लोकप्रिय थे कि सभी इन्हें चाहते थे।

ये शिवजीके बड़े भक्त थे। शिवजीने अपना माहेश्वर धनुष इन्हें धरोहरके रूपमें दे दिया था, वह इनके घरमें रखा था और उसकी पूजा होती थी। कहते हैं एक बार घरको लीपते समय श्रीजानकीजीने एक हाथसे उस प्रलयंकारी विशाल धनुषको उठा लिया और जमीनको लीपकर उसे फिर ज्यों-का-त्यों वहाँ रख दिया। उसी समय महाराजने प्रतिज्ञा की कि जो कोई हमारे इस माहेश्वर धनुषको उठा लेगा, उसीके साथ मैं सीताजीका विवाह करूँगा।

श्रीतुलसीकृत रामायणमें जनकजीका चरित्र बहुत ही संक्षिप्तरूपमें वर्णित हुआ है, किंतु जितना चरित्र उनका अंकित हुआ है, वह इतना सुन्दर है कि उसमें गाम्भीर्य, तेज, विद्वत्ता, ज्ञान, प्रेम आदि गुणोंका अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। उसमें परस्पर भिन्न गुणोंका ऐसा सामंजस्य है कि देखते ही बनता है।

महर्षि विश्वामित्रजीके साथ श्रीराम-लखन मिथिलापुरी पधारे हैं, सुनते ही महाराज जनक उनका सत्कार करने मन्त्री और पुरोहितोंके साथ आते हैं; आकर वे विधिवत् ऋषिकी पूजा करते हैं, कुशल-क्षेम पूछते हैं। ऋषिने राम-लखनको पुष्प लेने भेज दिया था, इसी अवसरपर वे अनूप भूपकिशोर आ जाते हैं। अहा, उन्हें देखकर ज्ञानशिरोमणि महाराज जनककी क्या दशा हो जाती है—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

मन प्रेममें मगन है, शरीरकी सुध-बुध नहीं, बहुत चेष्टा करके महाराज जनकने अपनेको सँभाला और अपने मनका भाव ऋषि विश्वामित्रके सम्मुख प्रकट करते हुए कहा—

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

तब विश्वामित्रजीने इशारेसे राजाके अनुमानका समर्थन करके फिर श्रीरामका संकेत पाकर कहा—

रघुकुल मनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए॥

जब किसी राजासे धनुष टस-से-मस नहीं हुआ, तब महाराज जनकने सब राजाओंको सम्बोधन करके कहा—

अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ॥

यह बात लक्ष्मणजीको बुरी लगी। उन्होंने बड़े जोरोंसे महाराज जनककी इस बातका विरोध किया। वृद्ध ब्रह्मज्ञानी राजर्षिको बालक लक्ष्मणने डाँट दिया—

कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी॥

लक्ष्मण बहुत कुछ कह गये। किंतु जनकजीकी गम्भीरता भंग नहीं हुई; उन्होंने न लक्ष्मणजीकी बातोंका बुरा ही माना, न खण्डन ही किया।

श्रीरामजीने धनुष तोड़ दिया। इसे सुनकर परशुरामजी आये। वे बहुत उछले-कूदे, बड़ी-बड़ी बातें कहीं; किंतु जनकजी एकदम तटस्थ ही बने रहे। वे समझते थे कि जिन्होंने इतने बड़े शिवधनुषको तोड़ दिया है, वे स्वयं इनसे समझ-बूझ लेंगे, हमें बीचमें पड़नेकी क्या जरूरत है।

जब श्रीरामजी वनको जाते हैं और भरतजी उन्हें मनानेके लिये चित्रकूट पहुँचते हैं तो वहाँ भी जनकजीके दर्शन होते हैं। उस समयकी उनकी गम्भीरता श्लाघनीय है। वे स्पष्ट यह भी नहीं कह सकते कि श्रीरामजी अयोध्या लौट जायँ; क्योंकि लोग कहेंगे जनकजीने जामाताका पक्ष लिया और भरतके प्रेमको देखकर वे यह भी नहीं कह सकते कि भरतजीकी बात न मानी जाय। अतः अपनी रानीसे भरतजीकी बहुत बड़ाई करते-करते अन्तमें उन्होंने यही कहा—

देबि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥

इससे उनके बीचमें न बोलना ही उचित है, वे जो कुछ करेंगे, वही ठीक होगा। अपनी पुत्री सीताको वनवासी वेषमें देखकर महाराजके हृदयकी जो दशा हुई, वह अवर्णनीय है। इस स्थलपर उसका वर्णन असम्भव है। क्या उनका वह मोह था? कवि कहते हैं, नहीं, कदापि नहीं—

मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥

जहाँ 'सिय-रघुबर' का 'सनेह' है, वहाँ मोह रह ही कैसे सकता है! ब्रह्मज्ञानी जनकजीके हृदयमें यह प्रेम निरन्तर रहता था! धन्य!

(९) श्रीभीष्म पितामहजी

परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथञ्चन॥

(महाभारत, आदिपर्व १०३। १५)

[भीष्मजी माता सत्यवतीसे कहते हैं—] 'मैं त्रिलोकीका राज्य छोड़ सकता हूँ, देवताओंका राज्य भी छोड़ सकता हूँ और जो इन दोनोंसे अधिक है, उसे भी छोड़ सकता हूँ, पर सत्य कभी नहीं छोड़ सकता।'

सन्तशिरोमणि पितामह भीष्म महाराज शान्तनुके औरस पुत्र थे और गंगादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। वसिष्ठ ऋषिके शापसे आठों वसुओंने मनुष्ययोनिमें अवतार लिया था, जिनमें सातको तो गंगाजीने जन्म लेते ही जलके प्रवाहमें बहाकर शापसे छुड़ा दिया, परंतु द्यौ नामक वसुके अंशावतार भीष्मको राजा शान्तनुने रख लिया। गंगादेवी पुत्रको उसके पिताके पास छोड़कर चली गयीं। बालकका नाम देवव्रत रखा गया।

दासराजके द्वारा पालित सत्यवतीपर मोहित हुए धर्मशील राजा शान्तनुको विषादयुक्त देखकर युक्तिसे देवव्रतने मन्त्रियोंद्वारा पिताके दुःखका कारण जान लिया और पिताकी प्रसन्नताके लिये सत्यवतीके धर्मपिता दासराजके पास जाकर उसकी इच्छानुसार 'राजसिंहासनपर न बैठने और आजीवन ब्रह्मचर्य पालनेकी' कठिन प्रतिज्ञा करके पिताका सत्यवतीके साथ विवाह करवा दिया। पितृभक्तिसे प्रेरित होकर देवव्रतने अपना जन्मसिद्ध राज्याधिकार छोड़कर सदाके लिये स्त्रीसुखका भी परित्याग कर दिया, इसलिये देवताओंने प्रसन्न होकर कामिनी-कांचनका सर्वथा परित्याग कर देनेवाले देवव्रतपर पुष्पवृष्टि करते हुए उनका नाम भीष्म रखा। पुत्रका ऐसा त्याग देखकर राजा शान्तनुने भीष्मको वरदान दिया कि 'तू जबतक जीना चाहेगा तबतक मृत्यु तेरा बाल भी बाँका न कर सकेगी, तेरी इच्छामृत्यु होगी।' निष्काम पितृभक्त और आजीवन अस्खलित ब्रह्मचारीके लिये ऐसा होना कौन बड़ी बात है! कहना न होगा कि भीष्मने आजीवन अपनी इस भीष्म-प्रतिज्ञाका पालन किया!

भीष्मजी बड़े ही वीर योद्धा थे और उनमें 'वीरता, तेज, धैर्य, कुशलता, युद्धसे कभी न हटना, दान और ऐश्वर्यभाव' ये सभी क्षत्रियोचित गुण प्रकट थे। वीरमूर्ति क्षत्रियकुलसंहारक परशुरामजीसे इन्होंने शस्त्रविद्या सीखी थी। जिस समय परशुरामजीने भीष्मजीसे यह आग्रह किया कि तुम काशिराजकी कन्या

अम्बासे विवाह कर लो, उस समय भीष्मजीने ऐसा करनेसे बिलकुल इनकार कर दिया और बड़ी नम्रतासे गुरुका सम्मान करते हुए अपनी स्वाभाविक शूरता और तेजभरे शब्दोंमें कहा—

'भय, दया, धनके लोभ और कामनासे मैं कभी क्षात्रधर्मका त्याग नहीं कर सकता, यह मेरा सदाका व्रत है।'

परशुरामजीको बहुत कुछ समझानेपर भी जब वे नहीं माने और इन्हें धमकाने देने लगे तब भीष्मने कहा—'आप कहते हैं कि मैंने अकेले ही इस लोकके सारे क्षत्रियोंको इक्कीस बार जीत लिया था, उसका कारण यही है कि उस समय भीष्म या भीष्मके समान किसी क्षत्रियने पृथिवीपर जन्म नहीं लिया था; पर अब मैं आपके प्रसादसे आपके इस अभिमानको निःसन्देह चूर्ण कर दूँगा।'

परशुरामजी कुपित हो गये। युद्ध छिड़ गया और लगातार तेईस दिनतक गुरु-शिष्यमें भयानक युद्ध होता रहा, परंतु परशुरामजी भीष्मको परास्त न कर सके। ऋषियों और देवताओंने आकर दोनोंको समझाया, परंतु भीष्मने क्षत्रियधर्मके अनुसार शस्त्र नहीं छोड़े। वे बोले—

'मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मैं युद्धमें पीठ दिखाकर पीछेसे बाणोंका प्रहार सहता हुआ कभी निवृत्त नहीं होऊँगा। लोभ, दीनता, भय और अर्थ आदि किसी कारणसे भी मैं अपना सनातनधर्म नहीं छोड़ सकता, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।'

इक्कीस बार पृथिवीको क्षत्रियहीन करनेवाले अमित तेजस्वी परशुराम भीष्मको नहीं जीत सके; अन्तमें देवताओंने बीचमें पड़कर युद्ध बन्द करवाया, परंतु भीष्मकी प्रतिज्ञा भंग न हुई!

जब सत्यवतीके दोनों पुत्र मर गये, भरतवंश और राज्यका कोई आधार न रहा, तब सत्यवतीने भीष्मसे राजगद्दी स्वीकार करने या पुत्रोत्पादन करनेके लिये कहा। भीष्म चाहते तो निष्कलंक कहलाकर राज्य और स्त्रीका सुख अनायास भोग सकते थे, परंतु विषयोपभोगसे विमुख परम संयमी महात्मा भीष्मने स्पष्ट कह दिया—'माता! तू इसके लिये आग्रह न कर। पंचमहाभूत चाहे अपना गुण छोड़ दें, सूर्य और चन्द्रमा चाहे अपने तेज और शीतलता त्याग दें, इन्द्र और धर्मराज अपना बल और धर्म छोड़ दें, परंतु तीनों लोकोंके राज्यसुख या उससे भी अधिकके लिये मैं अपना प्रिय सत्य कभी नहीं छोड़ सकता।'

भीष्मजीने दुर्योधनकी अनीति देखकर उसे कई बार समझाया था, पर वह नहीं समझा और जब युद्धका समय आया तब पाण्डवोंकी ओर मन होनेपर भी भीष्मने बुरे समयमें आश्रयदाताकी सहायता करना धर्म समझकर कौरवोंके सेनापति बनकर पाण्डवोंसे युद्ध किया। वृद्ध होनेपर भी उन्होंने दस दिनतक तरुण योद्धाकी तरह लड़कर रणभूमिमें अनेक बड़े-बड़े वीरोंको सदाके लिये सुला दिया और अनेकोंको घायल किया। कौरवोंकी रक्षा असलमें भीष्मके कारण ही कुछ दिनोंतक हुई। महाभारतके अठारह दिनोंके संग्राममें दस दिनोंका युद्ध अकेले भीष्मजीके सेनापतित्वमें हुआ, शेष आठ दिनोंमें कई सेनापति बदले। इतना होनेपर भी भीष्मजी पाण्डवोंके पक्षमें सत्य देखकर उनका मंगल चाहते थे और यह मानते थे कि अन्तमें जीत पाण्डवोंकी ही होगी।

भीष्मजी ज्ञानी, दृढ़प्रतिज्ञ, धर्मविद्, सत्यवादी, विद्वान्, राजनीतिज्ञ, उदार, जितेन्द्रिय और अप्रतिम योद्धा होनेके साथ ही भगवान्‌के अनन्य भक्त थे। श्रीकृष्णमहाराजको साक्षात् भगवान्‌के रूपमें सबसे पहले भीष्मजीने ही पहचाना था। धर्मराजके राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरके यह पूछनेपर कि 'अग्रपूजा किसकी होनी चाहिये?' भीष्मजीने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि 'तेज, बल, पराक्रम तथा अन्य सभी गुणोंमें श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम पूजा पानेयोग्य हैं।' भीष्मकी आज्ञासे सहदेवके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा होनेपर

जब शिशुपाल आदि राजा बिगड़े और उत्तेजित होकर कहने लगे कि 'इस घमण्डी बूढ़ेको पशुकी तरह काट डालो या इसे खौलते हुए तेलकी कड़ाहीमें डाल दो तब भीष्मने कुछ भी न घबड़ाकर स्वाभाविक तेजसे तमककर कहा—'हम जानते हैं श्रीकृष्ण ही समस्त लोकोंकी उत्पत्ति और विनाशके कारण हैं, इन्हींके द्वारा यह चराचर विश्व रचा गया है, यही अव्यक्त प्रकृति, कर्ता, सर्वभूतोंसे परे सनातन ब्रह्म हैं, यही सबसे बड़े पूजनीय हैं और जगत्के सारे सद्गुण इन्हींमें प्रतिष्ठित हैं। सब राजाओंका मान मर्दनकर हमने श्रीकृष्णकी अग्रपूजा की है, जिसे यह मान्य न हो वह श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेको तैयार हो जाय। श्रीकृष्ण सबसे बड़े हैं, सबके गुरु हैं, सबके बन्धु हैं और सब राजाओंसे पराक्रममें श्रेष्ठ हैं; इनकी अग्रपूजा जिन्हें अच्छी नहीं लगती, उन मूर्खोंको क्या समझाया जाय?'

यज्ञमें विघ्नकी सम्भावना देखकर जब धर्मराजने भीष्मसे यज्ञरक्षाका उपाय पूछा तब भीष्मने दृढ़ निश्चयके साथ कह दिया—'युधिष्ठिर! तुम इसकी चिन्ता न करो, शिशुपालकी खबर श्रीकृष्ण आप ही ले लेंगे।' अन्तमें शिशुपालके सौ अपराध पूरे होनेपर भगवान् श्रीकृष्णने वहीं उसे चक्रसे मारकर अपनेमें मिला लिया!

महाभारत-युद्धमें भगवान् श्रीकृष्ण शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा करके सम्मिलित हुए थे। वे अपनी भक्तवत्सलताके कारण सखाभक्त अर्जुनका रथ हाँकनेका काम कर रहे थे। एक बार भीष्मने दुर्योधनके कहने-सुननेपर पाँचों पाण्डवोंको पाँच बाणोंसे मारनेकी प्रतिज्ञा की। भगवान्ने कौशलसे भीष्मकी यह प्रतिज्ञा भंग करवा दी, तब भगवान् श्रीकृष्णकी ही शपथ करके उन्हींके बलपर भीष्मने यह प्रतिज्ञा की कि मैं कल 'भगवान्को शस्त्र ग्रहण करवा दूँगा।'

भीष्मके प्रणकी रक्षाके लिये दूसरे दिन भक्तवत्सल भगवान्को अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी। जगत्पति पीताम्बरधारी वासुदेव श्रीकृष्ण बार-बार सिंहनाद करते हुए हाथमें रथका टूटा चक्का लेकर भीष्मकी ओर ऐसे दौड़े, जैसे वनराज सिंह गरजते हुए विशाल गजराजकी ओर दौड़ता है। भगवान्का पीला दुपट्टा कन्धेसे गिर पड़ा। पृथ्वी काँपने लगी। सेनामें चारों ओरसे 'भीष्म मारे गये, भीष्म मारे गये' की आवाज आने लगी। परंतु इस समय भीष्मको जो असीम आनन्द था, उसका वर्णन करना सामर्थ्यके बाहरकी बात है। भगवान्की भक्तवत्सलतापर मुग्ध हुए भीष्म उनका स्वागत करते हुए बोले—

'हे पुण्डरीकाक्ष! आओ, आओ! हे देवदेव!! तुमको मेरा नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम! आज इस महायुद्धमें तुम मेरा वध करो! हे परमात्मन्! हे कृष्ण! हे निष्पाप! हे गोविन्द! तुम्हारे हाथसे युद्धमें मरनेपर मेरा अवश्य ही सब प्रकारसे परम कल्याण होगा। मैं आज त्रैलोक्यमें सम्मानित हूँ। हे पापरहित! मुझपर तुम युद्धमें इच्छानुसार प्रहार करो मैं तुम्हारा दास हूँ।'

अर्जुनने पीछेसे दौड़कर भगवान्के पैर पकड़ लिये और उन्हें बड़ी मुश्किलसे लौटाया।

अन्तमें शिखण्डीके सामने बाण न चलानेके कारण अर्जुनके बाणोंसे बिंधकर भीष्म शरशय्यापर गिर पड़े। भीष्म वीरोचित शय्यापर सोये थे, उनके सारे शरीरमें बाण बिंधे थे, केवल सिर नीचे लटकता था। उन्होंने तकिया माँगा, दुर्योधनादि नरम-नरम तकिया लाने लगे। भीष्मने अन्तमें अर्जुनसे कहा—'वत्स! मेरे योग्य तकिया दो।' अर्जुनने शोक रोककर तीन बाण उनके मस्तकमें नीचे इस तरह मारे कि सिर तो ऊँचा उठ गया और वे बाण तकियाका काम देने लगे। इससे भीष्म बड़े प्रसन्न हुए और बोले—

शयनस्यानुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया।
यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुषा॥

एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितिष्ठता।
स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाजौ शरतल्पगतेन वै॥

(महा० भीष्म० १२०। ४८-४९)

अर्थात् 'हे पुत्र अर्जुन! तुमने मेरे रणशय्याके योग्य ही तकिया देकर मुझे प्रसन्न कर लिया। यदि तुम मेरी बात न समझकर दूसरी तकिया देते तो मैं नाराज होकर तुम्हें शाप दे देता। क्षात्रधर्ममें दृढ़ रहनेवाले क्षत्रियोंको रणांगणमें प्राणत्याग करनेके लिये इसी प्रकारकी बाणशय्यापर सोना चाहिये।'

भीष्मजी शरशय्यापर बाणोंसे घायल पड़े थे, यह देखकर अनेक कुशल शस्त्रवैद्य बुलाये गये कि वे बाण निकालकर मरहम-पट्टी करके घावोंको ठीक करें; पर अपने इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्णको सामने देखते हुए मृत्युकी प्रतीक्षामें वीरशय्यापर शान्तिसे सोये हुए भीष्मजीने कुछ भी इलाज न कराकर वैद्योंको सम्मानपूर्वक लौटा दिया। धन्य वीरता और धन्य धीरता!

आठ दिनके बाद युद्ध समाप्त हो गया। धर्मराजका राज्याभिषेक हुआ। एक दिन युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और दोनों हाथ जोड़कर पलंगके पास खड़े हो गये। प्रणाम करके मुसकराते हुए युधिष्ठिरने भगवान्से कुशलक्षेम पूछी, परंतु उनके प्रश्नका कोई उत्तर नहीं मिला। भगवान्को इतना ध्यानमग्न देखकर धर्मराज बोले—'प्रभो! आप किसका ध्यान करते हैं? मुझे बतलाइये, मैं आपके शरणागत हूँ।' भगवान्ने उत्तर दिया—'धर्मराज! शरशय्यापर सोते हुए नरशार्दूल भीष्म मेरा ध्यान कर रहे थे, उन्होंने मुझे स्मरण किया था, इसलिये मैं भी भीष्मका ध्यान कर रहा था। भाई! इस समय मैं मनद्वारा भीष्मके पास गया था।'

फिर भगवान्ने कहा—'युधिष्ठिर! वेद और धर्मके सर्वोपरि ज्ञाता, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, महान् अनुभवी, कुरुकुलसूर्य पितामहके अस्त होते ही जगत्का ज्ञानसूर्य भी निस्तेज हो जायगा। अतएव वहाँ चलकर कुछ उपदेश ग्रहण करना हो तो कर लो।'

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण महाराजको साथ लेकर भीष्मके पास गये। बड़े-बड़े ब्रह्मवेत्ता ऋषि-मुनि वहाँ उपस्थित थे। भीष्मने भगवान्को देखकर प्रणाम और स्तवन किया। श्रीकृष्णने भीष्मसे कहा—'उत्तरायण आनेमें अभी तीस दिनकी देर है, इतनेमें आपने धर्मशास्त्रका जो ज्ञान सम्पादन किया है, वह युधिष्ठिरको सुनाकर इनके शोकको दूर कीजिये।' भीष्मने कहा—'प्रभो! मेरा शरीर बाणोंके घावोंसे व्याकुल हो रहा है, मन-बुद्धि चंचल है, बोलनेकी शक्ति नहीं है, बारम्बार मूर्छा आती है; केवल आपकी कृपासे ही अबतक जी रहा हूँ, फिर आप जगद्‌गुरुके सामने मैं शिष्य यदि कुछ कहूँ तो वह भी अविनय ही है। मुझसे बोला नहीं जाता, क्षमा करें।' प्रेमसे छलकती हुई आँखोंसे भगवान् गद्‌गद होकर बोले—'भीष्म! तुम्हारी ग्लानि, मूर्च्छा, दाह, व्यथा, क्षुधा, क्लेश और मोह सब मेरी कृपासे अभी नष्ट हो जायँगे, तुम्हारे अन्तःकरणमें सब प्रकारके ज्ञानकी स्फुरणा होगी, तुम्हारी बुद्धि निश्चयात्मिका हो जायगी, तुम्हारा मन नित्य सत्त्वगुणमें स्थिर हो जायगा, तुम धर्म या जिस किसी भी विद्याका चिन्तन करोगे, उसीको तुम्हारी बुद्धि बताने लगेगी।' श्रीकृष्णने फिर कहा—'मैं स्वयं उपदेश न करके तुमसे इसलिये करवाता हूँ कि जिससे मेरे भक्तकी कीर्ति और यश बढ़े।' भगवत्प्रसादसे भीष्मके शरीरकी सारी वेदनाएँ उसी समय नष्ट हो गयीं, उनका अन्तःकरण सावधान और बुद्धि सर्वथा जाग्रत् हो गयी।

ब्रह्मचर्य, अनुभव, ज्ञान और भगवद्भक्तिके प्रतापसे अगाध ज्ञानी भीष्म जिस प्रकार दस दिनतक रणमें तरुण उत्साहसे झूमे थे, उसी प्रकारके उत्साहसे उन्होंने युधिष्ठिरको धर्मके सब अंगोंका पूरी तरह उपदेश

दिया और उनके शोकसन्तप्त हृदयको शान्त कर दिया। इस प्रकार भगवान्‌के सामने, ऋषियोंके समूहसे घिरे हुए, धर्मचर्चा करते-करते जब उत्तम उत्तरायणकाल आया तो भीष्मजी मौन हो गये और उन्होंने पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्णमें पूरी तरह मन लगा दिया और फिर उनकी स्तुति करते हुए बोले—

'मैंने इस तरह उन यादवपुंगव एवं सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णमें कामनारहित बुद्धि अर्पित कर दी है, जिन आनन्दमय ब्रह्मसे प्रकृतिका संयोग होनेपर यह संसार चलता है। त्रिभुवनसुन्दर एवं तमाल-तरुके समान श्यामशरीर और सूर्य-किरणके-से गौरवर्ण सुन्दर वस्त्रको धारण किये और अलकावलीसे आवृत सुशोभित मुख-कमलवाले अर्जुनके मित्र श्रीकृष्णमें मेरी निष्काम भक्ति हो। युद्धमें घोड़ोंकी रज पड़नेसे धूम्रवर्ण एवं चंचल अलकावली और श्रमजनित प्रस्वेद-बिन्दुओंसे अलंकृत जिनका मुख है और मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे कवच कट जानेपर जिनकी त्वचा भिन्न हो रही है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा मन रमण करे। सखाके कहनेपर शीघ्र ही अपनी-परायी दोनों सेनाओंके बीचमें रथ स्थापित करके शत्रुपक्षकी सेनाके वीरोंकी आयु उनकी ओर देखकर ही जिन्होंने हर ली, उन अर्जुनके मित्र श्रीकृष्णमें मेरा मन रमे। सम्मुख स्थित शत्रुसेनामें आगे स्वजनोंको मरने-मारनेपर उद्यत देखकर जब अर्जुन स्वजन-वधको दोष समझकर धनुष-बाण त्यागकर स्वजन-वधसे निवृत्त हो गये, तब जिन्होंने आत्मज्ञानका उपदेश करके अर्जुनकी कुबुद्धिको हर लिया, उन परमेश्वर श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें मेरी रति हो। युद्धमें 'मैं शस्त्र नहीं ग्रहण करूँगा' अपनी इस प्रतिज्ञाको त्यागकर 'मैं श्रीकृष्णको शस्त्र ग्रहण करा दूँगा' मेरी इस प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये रथसे कूदकर रथका चक्का हाथमें लेकर जो मुझे मारनेको इस तरह वेगसे दौड़े जैसे हाथीके मारनेको सिंह दौड़ता है, तब पृथ्वी उनके प्रतिपदमें काँपने लगी और कन्धेसे दुपट्टा गिर गया, वैसी शोभाको प्राप्त हुए उन श्रीकृष्णकी मैं शरण हूँ। मेरे पैने बाणोंके प्रहारसे कवच टूट गया और श्यामसुन्दरका शरीर रुधिरसे लाल हो गया, तब जो मुझ सशस्त्रको मारनेके लिये वेगसे दौड़े, वे भक्तवत्सल भगवान् मेरी गति हों। अर्जुनके रथपर स्थित होकर एक हाथमें चाबुक उठाये और एक हाथसे घोड़ोंकी लगाम पकड़े जो शोभायुक्त श्रीकृष्णभगवान् दर्शनीय हैं, उनमें मुझ मरनेवालेकी रति हो, जिस छबिको देखकर महाभारत-युद्धमें मरे हुए सब शूरवीर सारूप्यमुक्तिको प्राप्त हुए। अपनी ललित गति, विलास, मनोहर हास, प्रेममय निरीक्षण आदिसे गोपियोंके मान करनेपर जब श्रीकृष्णजी अन्तर्हित हो गये तब विरहसे व्याकुल गोपियाँ भी जिनकी लीलाका अनुकरण करके तन्मय हो गयीं, ऐसे भक्तिसे प्राप्त होनेवाले श्रीकृष्णमें मेरी दृढ़ भक्ति हो। युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें अनेक ऋषि-मुनि और महिपालोंसे सुशोभित सभाभवनके बीच जिनकी प्रथम पूजा हुई, वही सर्वश्रेष्ठ जगत्पूज्य परब्रह्म इस समय मेरे नेत्रोंके सामने हैं। अहोभाग्य! मैं कृतार्थ हो गया। अब जन्म-कर्मरहित और अपने ही उत्पन्न किये प्राणियोंके हृदयमें जो एक होकर भी अनेक पात्रोंमें पड़े हुए प्रतिबिम्बद्वारा अनेकरूप प्रतीत होनेवाले सूर्यकी भाँति अनेकरूप प्रतीत होते हैं, उन ईश्वर श्रीकृष्णको भेददृष्टि और मोहसे शून्यचित्तद्वारा मैं प्राप्त हुआ हूँ।'

एक सौ पैंतीस वर्षकी अवस्थामें उत्तरायणके समय सैकड़ों ब्रह्मवेत्ता ऋषि-मुनियोंके बीच इस प्रकार साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए—

कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः।
आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत्॥

(श्रीमद्भा० १।९।४३)

'आत्मरूप भगवान् श्रीकृष्णमें मन, वाणी और दृष्टिको स्थिर करके भीष्मजी परम शान्तिको प्राप्त हो

गये!'

(१०) श्रीबलिजी

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद् यस्य न भवेत्स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥*

प्रह्लादजीके पुत्र विरोचन और विरोचनजीके पुत्र लोकविख्यात दानिशिरोमणि महाराज बलि हुए। दैत्य-कुलमें उत्पन्न होनेपर भी ये अपने पितामहके समान भगवद्भक्त, दानियोंमें अग्रणी और प्रातःस्मरणीय चिरजीवियोंमें गिने जाते हैं। इन्होंने अपने पराक्रमसे दैत्य, दानव, मनुष्य और देवताओंतकको जीत लिया। ये तीनों लोकोंके एकमात्र स्वामी थे। इन्द्र स्वर्गलोकके सिंहासनसे उतार दिये गये, सर्वत्र महाराज बलिका ही राज्य था। ये बड़े ब्रह्मण्य, धर्मात्मा और साधुसेवी थे। देवताओंने भगवान्से प्रार्थना की। देवताओंकी माता अदितिने एक घोर व्रत किया, उससे सन्तुष्ट होकर भगवान्ने अदितिको वरदान दिया कि 'मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपमें उत्पन्न हूँगा। तभी मैं तुम्हारे पुत्रोंका संकट दूर करूँगा।'

कालान्तरमें भगवान्ने अदितिके यहाँ अवतार धारण किया। भगवान्का यह मंगलविग्रह बहुत छोटा था, इससे आप वामन कहलाये और इन्द्रके छोटे भाई होनेसे आपकी 'उपेन्द्र' संज्ञा हुई। सब देवता प्रसन्न हुए कि हमारा गया हुआ ऐश्वर्य फिर प्राप्त होगा।

महाराज बलि तीनों लोकोंके स्वामी बनकर निश्चिन्त हो यज्ञ कर रहे थे। वामनभगवान् ब्रह्मचारीका वेष धारण करके महाराज बलिके यज्ञमण्डपमें गये। बलिने वामन ब्रह्मचारीका शास्त्रविधिसे पूजन किया, अर्घ्य-पाद्य देकर गोदानके अनन्तर महाराजने कहा—'आप सुपात्र ब्रह्मचारी हैं, मैं आपको कुछ देना चाहता हूँ; आपको जो भी अच्छा लगे वह माँग लीजिये। आपके माँगनेपर मैं सब कुछ दे सकता हूँ, निःसंकोच होकर आप माँगें। मेरे यहाँसे कोई ब्राह्मण विमुख होकर नहीं जाता।'

वामनभगवान् बोले—'मुझे किसी चीजकी जरूरत नहीं, मैं तो आपसे केवल तीन पग पृथ्वी चाहता हूँ, जिसपर मैं बैठ सकूँ। अधिककी मुझे इच्छा नहीं है।' बलिने बहुत समझाया कि 'कल्पवृक्षके नीचे आकर भी आप एक दिनका अन्न ही चाहते हैं। मैं त्रिलोकीका स्वामी हूँ, कुछ और माँगिये।' राजाके बहुत कहनेपर भी वामनभगवान्ने कुछ नहीं माँगा। वे तीन पग पृथ्वीपर ही अड़े रहे। अन्तमें राजाने कहा—'अच्छा दूँगा।'

इसपर बलिके कुलगुरु भगवान् शुक्राचार्यने उन्हें समझाया कि—'ये वामनवेषधारी साक्षात् भगवान् हैं, तीन पगमें तीनों लोकोंको नाप लेंगे। तुझे श्रीहीन बना देंगे। ऐसे दानसे क्या लाभ! तुम कह दो कि मैं नहीं दूँगा।'

बलिने कहा—'प्रथम तो किसी बातको कहकर फिर पलट जाना बड़ा पाप है, इसके अतिरिक्त मान लिया ये ब्राह्मण न होकर साक्षात् भगवान् ही हैं, तब तो और भी उत्तम है। मैं भगवान्की प्रसन्नताके लिये ही यज्ञ कर रहा हूँ, यदि साक्षात् भगवान् मेरी वस्तुको ग्रहण करने आ गये हैं तो मेरा अहोभाग्य है! जो कह दिया है उसे मैं अवश्य करूँगा।'

इसपर क्रुद्ध होकर गुरुने उन्हें शाप दिया, तो भी वे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए। वामनरूपधारी वे भगवान् तो थे ही। उन्होंने एक पगमें पृथ्वी और दूसरेमें स्वर्ग नाप लिया, तीसरेके बदलेमें बलिको बाँध लिया। बलि तनिक भी विचलित नहीं हुए। उनके सैनिक तथा जातिवाले तो क्रुद्ध भी हुए, किंतु बलिने

* सुन्दर कुलमें जन्म, अच्छे कर्म, युवावस्था, सुन्दर रूप, अर्थकरी विद्या, बड़ा भारी ऐश्वर्य, विपुल धन आदि वस्तुओंको प्राप्त करके जिसे अभिमान न हो—भगवान् कहते हैं—उसपर मेरा परम अनुग्रह समझना चाहिये।

सबको समझाते हुए भगवान्‌से कहा—'ब्रह्मन्! दातव्य वस्तुसे वस्तुका दाता बड़ा होता है, अतः तीसरे पैरमें आप मेरे शरीरको ले लीजिये।'

महाराज बलिके ऐसे अपूर्व त्यागको देखने ब्रह्मादि समस्त देवता वहाँ आ गये। ब्रह्माजीने भगवान्‌से पूछा—'भगवन्! शुभ कार्यका फल तो शुभ ही होना चाहिये। इसने यज्ञ किया, दान दिया, फिर भी यह बाँधा क्यों गया?' इसपर भगवान्‌ने कहा—'ब्रह्मन्! जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसका पहले तो मैं धन हर लेता हूँ, पीछे चाहे उसे सम्पूर्ण सम्पत्ति सौंप दूँ। यह तो मेरी कृपा है। बलि मेरा परम भक्त है, इसकी दुर्गति कभी न होगी। देवताओंके भी ऐश्वर्यसे दुर्लभ मैं इसे पातालका ऐश्वर्य दूँगा। एक बार इसकी इन्द्र बननेकी इच्छा हुई थी, उसे पूरा करके मैं इसे अपने धाममें ले जाऊँगा।'

महाराज बलिके त्याग और धैर्यको देखकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'राजन्! तुम जो चाहो वह वरदान मुझसे माँग लो।'

बलिने कहा—'भगवन्! मुझे सांसारिक वस्तुओंकी तो आवश्यकता है नहीं, मैं तो आपको चाहता हूँ। आप सदा मेरे द्वारपर रहें, यही मेरी इच्छा है।'

भगवान् हँसे और सोचने लगे—'हम समझते थे हमने इसे बाँधा है। किंतु इसने उलटे हमहीको बाँध लिया।' भगवान् तो सदा अपने भक्तोंकी प्रेमरज्जुमें बँधे ही हुए हैं। उन्होंने कहा—'आजसे मैं सदा तुम्हारे द्वारपर द्वारपाल बनकर रहूँगा।'

भगवान्‌का आशीर्वाद पाकर बलि प्रसन्नतापूर्वक सुतललोकमें चले गये, गदापाणि भगवान् आजतक उनके दरवाजेपर एकरूपसे द्वारपाल बने हुए खड़े हैं। यह है भगवान्‌की भक्तवत्सलताका नमूना और यह है भक्तोंके सर्वस्वत्यागका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण!

(११) श्रीशुकदेवजी

शुकदेवजी महर्षि वेदव्यासके पुत्र हैं। इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेकों प्रकारकी कथाएँ मिलती हैं। महर्षि वेदव्यासने यह संकल्प करके कि पृथ्वी, जल, वायु और आकाशकी भाँति धैर्यशाली तथा तेजस्वी पुत्र प्राप्त हो, गौरी-शंकरकी विहारस्थली सुमेरुशृंगपर घोर तपस्या की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शिवजीने वैसा ही पुत्र होनेका वर दिया। यद्यपि भगवान्‌के अवतार श्रीकृष्णद्वैपायनकी इच्छा और दृष्टिमात्रसे कई महापुरुषोंका जन्म हो सकता था और हुआ है तथापि अपने ज्ञान तथा सदाचारके धारण करनेयोग्य संतान उत्पन्न करनेके लिये और संसारमें किस प्रकारसे संतानकी सृष्टि करनी चाहिये—यह बात बतानेके लिये ही उन्होंने तपस्या की होगी। शुकदेवकी महिमाका वर्णन करते समय इतना स्मरण हो जाना कि वे वेदव्यासके तपस्याजनित पुत्र हैं, उनके महत्त्वकी असीमता सामने ला देता है।

एक दिन वे अरणिमन्थन कर रहे थे। उसी समय घृताची अप्सरा वहाँ आ गयी। संयोग ही ऐसा था, या यों कहें कि यही बात होनेवाली थी, उनका वीर्य अरणिमें ही गिर पड़ा। उसीसे शुकदेवका जन्म हुआ। उनके शरीरसे निर्धूम अग्निकी भाँति निर्मल ज्योति फैल रही थी। वे उस समय बारह वर्षके बालककी भाँति थे। स्त्रीरूप धारण करके गंगाजी वहाँ आयीं, बालकको उन्होंने स्नान कराया। आकाशसे काला मृगचर्म और दण्ड आया। गन्धर्व, अप्सरा, विद्याधर आदि गाने, बजाने और नाचने लगे। देवताओंने पुष्पवर्षा की। सारा संसार आनन्दमग्न हो गया। भगवान् शंकर और पार्वतीने स्वयं पधारकर उसी समय उनका उपनयन-संस्कार कराया। उसी समय सारे वेद, उपनिषद्, इतिहास आदि मूर्तिमान् होकर उनकी सेवामें उपस्थित हुए। अब वे ब्रह्मचारी होकर तपस्या करने लगे। उनकी प्रवृत्ति धर्म, अर्थ और कामकी ओर न थी; वे केवल

मोक्षका ही विचार करते रहते थे।

उन्होंने एक दिन अपने पिता व्यासदेवके पास आकर बड़ी नम्रताके साथ मोक्षके सम्बन्धमें बहुत-से प्रश्न किये। उत्तरमें व्यासदेवने बड़े ही वैराग्यपूर्ण उपदेश दिये। यथा—

'बेटा! धर्मका सेवन करो। यम-नियम तथा दैवी सम्पत्तियोंका आश्रय लो। यह शरीर पानीके बुलबुलेके समान है। आज है तो कल नहीं। क्या पता किस समय इसका नाश हो जाय। इसमें आसक्त होकर अपने कर्तव्यको नहीं भूलना चाहिये। दिन बीते जा रहे हैं। क्षण-क्षण आयु छीज रही है। एक-एक पलकी गिनती की जा रही है। तुम्हारे शत्रु सावधान हैं। तुम्हें नष्ट कर डालनेका मौका ढूँढ़ रहे हैं। अभी-अभी इस संसारकी ओरसे अपना मुँह मोड़ लो। अपने जीवनकी गति उस ओर कर दो, जहाँ इनकी पहुँच नहीं है।'

'संसारमें वे ही महात्मा सुखी हैं, जिन्होंने वैदिकमार्गपर चलकर धर्मका सेवन करके परमतत्त्वकी उपलब्धि की है। उनकी सेवा करो और वास्तविक शान्ति प्राप्त करनेका उपाय जानकर उसपर आरूढ़ हो जाओ। दुष्टोंकी संगति कभी मत करो। वे पतनके गड्ढेमें ढकेल देते हैं। वीरताके साथ काम-क्रोधादि शत्रुओंसे बचो और धीरताके साथ आगे बढ़ो। तुम्हें कोई तुम्हारे मार्गसे विचलित नहीं कर सकता। परमात्मा तुम्हारा सहायक है। वह तुम्हारी शुभेच्छा और सचाईको जानता है।'

'बेटा! मैं तुम्हारा अधिकार जानता हूँ। तुम तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये मिथिलाके नरपति जनकके पास जाओ। वे तुम्हारे सन्देहको दूरकर स्वरूपबोध करा देंगे। तुम जिज्ञासु हो, बड़ी नम्रताके साथ उनके पास जाना। परीक्षाका भाव मत रखना। घमण्ड मत करना। उनकी आज्ञाका पालन करना। मानुषमार्गसे पैदल तितिक्षा करते हुए ही जाना उचित है।'

पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके शुकदेवजी महाराज कई वर्षमें अनेकों प्रकारके कष्ट सहन करते हुए मिथिलामें पहुँचे। द्वारपालोंने इन्हें अन्दर जानेसे रोक दिया। परंतु उनकी जाज्वल्यमान ज्योतिको देखकर और तिरस्कारकी दशामें भी पूर्ववत् प्रसन्न देखकर एकने उनके पास आकर बड़ी अभ्यर्थना की। वह उन्हें बड़े सत्कारसे अन्दर ले गया। मन्त्रीने उन्हें एक ऐसे स्थानपर ठहराया, जहाँ भोगकी अनेकों वस्तुएँ थीं। उनकी सेवामें बहुत-सी सुन्दर स्त्रियाँ लगा दीं, परंतु वे विचलित नहीं हुए। सुख-दुःख, शीत-उष्णमें एक-से रहनेवाले शुकको यह सब देखकर कुछ भी हर्ष-शोक नहीं हुआ। ब्रह्मचिन्तनमें संलग्न रहकर उन्होंने इसी प्रकार वह दिन और रात्रि बिता दी।

दूसरे दिन प्रातःकाल जनकने आकर उनकी विधिवत् पूजा-अर्चा की। कुशल-मंगलके पश्चात् शुकदेवने अपने आनेका प्रयोजन बतलाया और प्रश्न किया। जनकने उनके अधिकारकी प्रशंसा करके कहा—

'बिना ज्ञानके मोक्ष नहीं होता और बिना गुरुसम्बन्धके ज्ञान नहीं होता। इस भवसागरसे पार करनेके लिये गुरु ही कर्णधार है। ज्ञानसे ही कृतकृत्यता प्राप्त होती है। फिर तो सभी मार्ग स्वयं समाप्त हो जाते हैं। लोकमर्यादा और कर्ममर्यादाका उच्छेद न हो, इसीके लिये वर्णाश्रमधर्मका सेवन आवश्यक कहा गया है। इनके आश्रयसे क्रमशः आगे बढ़ते चलें तो अन्तमें पाप-पुण्यसे परेकी गति प्राप्त हो जाती है। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये वर्णाश्रमधर्मकी बड़ी आवश्यकता है। जिसे ब्रह्मचर्य-आश्रममें ही तत्त्वकी उपलब्धि हो जाय उसे और आश्रमोंका कोई प्रयोजन नहीं है। तामसिकता और राजसिकता छोड़कर सात्त्विकताका आश्रय लेना चाहिये। धीरे-धीरे बहिर्मुखताका त्याग करके अन्तर्मुखताका सम्पादन करना ही साधनाका सच्चा स्वरूप है। जो पुरुष सब प्राणियोंमें अपने आत्मा और अपने आत्मामें समस्त प्राणियोंका दर्शन करते हैं, वे पाप-पुण्यसे निर्लेप हो जाते हैं।'

'जिसे किसीका भय नहीं है, जो किसीको भय नहीं पहुँचाता, जिसे न राग है और न द्वेष है, वही ब्रह्मसम्पन्न होता है। जब जीव मन, वाणी और कर्मसे किसीका अनिष्ट नहीं करता; काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया आदि मनोमलोंको त्याग देता है; दुःख-सुख, हानि-लाभ, जीवन-मरण, शीत-उष्ण, निन्दा-स्तुति आदि द्वन्द्वोंमें समान दृष्टि रखने लगता है, तब ब्रह्मसम्पन्न हो जाता है।'

'शुकदेव! ये सभी बातें तथा अन्यान्य समस्त सद्गुण तुममें प्रत्यक्ष दीख रहे हैं। मैं जानता हूँ कि तुम्हें समस्त ज्ञातव्य बातोंका ज्ञान है। तुम विषयोंके परे पहुँच चुके हो। तुम्हें विज्ञान प्राप्त है। तुम्हारी बुद्धि स्थिर है। तुम ब्रह्ममें स्थित हो, तुम स्वयं ब्रह्म हो। और क्या कहूँ?'

जनकका उपदेश सुनकर शुकदेवको बड़ा आनन्द हुआ। उनसे विदा होकर वे हिमालयपर अपने पिता व्यासजीके आश्रमपर लौट आये।

इनकी उत्पत्तिकी एक ऐसी कथा भी है कि व्यासकी एक वटिका नामकी पत्नी थीं। उन्होंने व्यासदेवकी अनुमतिसे पुत्रप्राप्तिके लिये बड़ी तपस्या की। उससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने वर दिया कि तुम्हें एक बड़ा तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा। समयपर गर्भस्थिति हुई, परंतु बारह वर्ष हो गये प्रसव नहीं हुआ। वह गर्भस्थ शिशु बातचीत भी करता था। इतना ही नहीं, उसने गर्भमें ही वेद, उपनिषद्, दर्शन, इतिहास, पुराण आदिका सम्यक् ज्ञान भी प्राप्त कर लिया। अब व्यासदेवने बालकसे बड़ी प्रार्थना की कि गर्भसे बाहर निकल आओ, परंतु उसने यह कहकर गर्भसे बाहर आना अस्वीकार कर दिया कि 'मैंने अबतक अनेक योनियोंमें जन्म ग्रहण किया है। बहुत भटक चुका हूँ। अब बाहर न निकलकर यहीं भजन करनेका विचार है।' व्यासदेवने कहा—'तुम नरकरूप इस गर्भसे बाहर आ जाओ। तुम मायाके चक्करमें न पड़ोगे। योगका आश्रय लो। भगवान्का भजन करो। तुम्हारा मुख देखकर मैं भी पितृऋणसे मुक्त हो जाऊँगा। अन्यथा तुम्हारी माँ मर जायगी।' माँके मरनेकी बात सुनकर शुकदेवको दया आ गयी। उनका कोमल हृदय पिघल उठा। उन्होंने कहा—'यदि श्रीकृष्ण आकर आपकी बातोंका समर्थन करें तो मैं निकल सकता हूँ।' इसी बहाने उन्होंने जन्मके समय ही अपने पास श्रीकृष्णको बुला लिया। व्यासकी प्रार्थनासे श्रीकृष्णने आकर कहा कि 'गर्भसे निकल आओ। मैं इस बातका साक्षी हूँ कि माया तुमपर प्रभावी नहीं होगी।' वे गर्भसे निकल आये। उस समय उनकी अवस्था बारह वर्षकी थी। जन्मते ही श्रीकृष्ण, माँ और पिताको नमस्कार करके उन्होंने जंगलकी यात्रा की। उनके श्यामवर्णके सुगठित, सुकुमार और सुन्दर शरीरको देखकर व्यासदेव मोहित हो गये। उन्होंने बड़ी चेष्टा की, बहुत समझाया कि तुम मेरे पास ही रहो, परंतु शुकदेवने एक न मानी। उस समयका पिता-पुत्र-संवाद स्कन्दपुराणकी एक अमूल्य वस्तु है। प्रत्येक विरक्तको उसका मनन करना चाहिये। अन्ततः वे विरक्त होकर चले ही गये।

एक अन्य कथा इस प्रकार आती है कि एक समय पार्वतीने जिज्ञासा की कि 'प्रभो! आप मुझे श्रीकृष्णसम्बन्धी कथा सुनायें; क्योंकि आप उन्हींका स्मरण-चिन्तन निरन्तर किया करते हैं।' महादेवने कहा—'बड़ी गोपनीय बात है। देख लो, कोई दूसरा तो नहीं है?' पार्वतीने देखकर कह दिया—'यहाँ कोई दूसरा नहीं है।' वहाँ एक तोतेका सड़ा हुआ अण्डा अवश्य पड़ा था; परंतु वह मर गया था, इससे पार्वतीने उसकी चर्चा ही नहीं की। महादेवने कहा—'अच्छा! हुँकारी भरती जाना।' वे कहने लगे। दशम स्कन्धतक तो वे सुनती गयीं और स्वीकारोक्ति (ओम्)-का उच्चारण भी करती गयीं। परंतु अन्तमें उन्हें नींद आ गयी। अबतक वह तोतेका अण्डा भागवतकथामृतका पान करके जीवित हो उठा था। पार्वतीको निद्रित देखकर उसने हुँकारी भरनी शुरू की। अन्तमें जब पार्वतीकी नींदका पता चला तब महादेवने उस शुकका पीछा किया। वह भागकर व्यासदेवके आश्रमपर आया और उनके मुखमें घुस गया। महादेवके लौटनेपर फिर यही

शुक व्यासदेवके अयोनिज पुत्रके रूपमें प्रकट हुए।

इस प्रकार अनेकों कथाएँ आती हैं। ये सभी सत्य हैं, स्वयं व्यासदेवकी लिखी हैं और कल्पभेदसे सम्भव भी हैं। उनका जीवन विरक्तिमय था। वे निर्गुणमें पूर्णत: परिनिष्ठित थे। व्यासजीसे अलग ही विचरते रहते थे। गाँवोंमें केवल गौ दुहनेके समय जाते और उतने ही समयतक वहाँ रहते। अपनेको सर्वदा गुप्त रखते। व्यासजीकी इच्छा थी कि ये मेरे पास आते और मेरे जीवनकी परमनिधि भागवतसंहिताका अध्ययन करते। परंतु वे मिलते ही न थे। व्यासदेवने भागवतका एक अत्युत्तम श्लोक* अपने विद्यार्थियोंको रटा दिया था। वे उसका गायन करते हुए जंगलोंमें समिधा लाने जाया करते थे। एक दिन उसे शुकदेवने भी सुना। श्रीकृष्णकी लीलाने उन्हें खींच ही लिया। वे निर्गुणनिष्ठ होनेपर भी भगवान्के गुणोंमें रम गये। उन्होंने अठारह हजार श्लोकोंका अध्ययन किया। अब वे मन-ही-मन उन्हें गुनगुनाते हुए विचरने लगे। इसी परमहंससंहिताका सप्ताह उन्होंने महाराज परीक्षितको सुनाया था।

इन भागवतवक्ता परमभागवत शुकदेवके पास प्राय: बड़े-बड़े ऋषि आया करते थे। नारदीयपुराणमें सनत्कुमारके और महाभारतमें नारदके आनेकी चर्चा आयी है। उनके आनेपर शुकदेव बड़े प्रेमसे उनकी पूजा करते और उनसे प्रश्न करके तत्त्वकी बात सुनते। एक बार इन्द्रने इनकी तपस्या और त्याग देखकर रम्भा आदि अप्सराओंको विघ्न करनेके लिये भेजा। उस समय शुकदेव इस प्रकार समाधिमग्न हो गये कि उन्हें पता ही न चला कि यहाँ अप्सरा, वसन्त, काम आदि विघ्न करने आये हैं। बहुत समय बाद समाधि खुलनेपर रम्भाने बड़ी चेष्टा की, बहुत फुसलाया, परंतु वे विचलित न हुए। वह लजाकर चली गयी। स्थूल शरीरके कारण होनेवाले विक्षेपोंका विचार करके उन्होंने ब्रह्म होकर ही रहनेका निश्चय किया। उस समय त्रिलोकीके सभी प्राणियोंने उनकी पूजा की। व्यासदेव पुत्रका यह विचार सुनकर शोकाकुल हो उनके पीछे-पीछे दौड़े। शुकदेवने पहले ही आज्ञा कर रखी थी, इसलिये वृक्षोंने व्यासदेवको समझानेकी बहुत कुछ चेष्टा की; पर वे आगे बढ़ते ही गये। एक सरोवरमें कुछ अप्सराएँ स्नान कर रही थीं, वे शुकदेवके सामने ज्यों-की-त्यों खड़ी रहीं किंतु व्यासजीको देखकर वस्त्र पहनने लगीं। इसपर व्यासजीने पूछा कि शुकदेवको देखकर तो तुम स्नान करती ही रह गयीं, मुझे देखकर क्यों निकल आयीं? अप्सराओंने बताया कि—'अभी तुम्हारी दृष्टिमें स्त्री-पुरुषका भेद है, परंतु तुम्हारे पुत्र शुकदेवको नहीं है।' यह सुनकर व्यासजी पुत्रकी महिमासे प्रसन्न और अपनी कमजोरीसे लज्जित हो गये। उनके शोकको देखकर स्वयं महादेवजीने पधारकर उन्हें समझाया कि—'मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें ऐसा महत्त्वशाली पुत्र दिया। उसे परमगति प्राप्त हुई है। उसकी कीर्ति अक्षय होगी।' यह कहकर महादेवने उन्हें एक छायाशुक दिया। व्यासदेवने उन्हीं छायाशुकको लेकर सन्तोष किया और अब भी वे निरन्तर अपने पुत्रको देखा करते हैं।

शुकदेव ब्रह्मभूत हो गये हों या छायाशुकके रूपमें विद्यमान हों, कम-से-कम यह बात अधिकारके साथ कही जा सकती है कि वे अब भी हैं और अधिकारी पुरुषोंको दर्शन देकर उपदेश भी करते हैं।

---

* बर्हापीडं नटवरवपु: कर्णयो: कर्णिकारं बिभ्रद् वास: कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्ति:॥ (श्रीमद्भा० १०।२१।५)

(गोपिकाएँ मन-ही-मन देखने लगीं कि) श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मयूरपिच्छ है और कानोंपर कनेरके पीले-पीले पुष्प; शरीरपर सुनहला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंकी बनी वैजयन्ती माला है। रंगमंचपर अभिनय करते हुए श्रेष्ठ नटका-सा क्या ही सुन्दर वेष है। बाँसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ वह वृन्दावनधाम उनके चरणचिह्नोंसे और भी रमणीय बन गया है।

कहीं-कहीं इनकी एक पीवरी नामकी स्त्री और कृष्ण, गौरप्रभ आदि संतानोंका भी वर्णन आता है।

(१२) श्रीधर्मराजजी

भगवान् सूर्यकी पत्नी संज्ञासे आपका प्रादुर्भाव हुआ है। आप कल्पान्ततक संयमनीपुरीमें रहकर जीवोंको उनके कर्मानुसार शुभाशुभ फलका विधान करते रहते हैं। ये पुण्यात्मा लोगोंको धर्मराजके रूपमें बड़े सौम्य और पापात्मा जीवोंको यमराजके रूपमें भयंकर दीखते हैं। जैसे अशुद्ध सोनेको शुद्ध करनेके लिये अग्निमें तपाते हैं, वैसे ही आप कृपावश जीवोंको दण्ड देकर, उन्हें शुद्धकर भगवद्भजनके योग्य बनाते हैं।

भगवान्के मंगलमय नामकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रीधर्मराजजी अपने दूतोंसे कहते हैं कि—

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत॥
एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥

(श्रीमद्भा० ६। ३। २३-२४)

अर्थात् प्रिय दूतो! भगवान्के नामोच्चारणकी महिमा तो देखो, अजामिल-जैसा पापी भी एक बार नामोच्चारण करनेमात्रसे मृत्युपाशसे छुटकारा पा गया। भगवान्के गुण, लीला और नामोंका भली-भाँति कीर्तन मनुष्योंके पापोंका सर्वथा विनाश कर दे, यह कोई उसका बहुत बड़ा फल नहीं है; क्योंकि अत्यन्त पापी अजामिलने मरनेके समय चंचलचित्तसे अपने पुत्रका नाम 'नारायण' उच्चारण किया, इस नामाभासमात्रसे ही उसके सारे पाप तो क्षीण हो ही गये, मुक्तिकी प्राप्ति भी हो गयी।

पुनश्च—**ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः।**
तान् नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान् नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे॥

(श्रीमद्भा० ६। ३। २७)

अर्थात् जो समदर्शी साधु भगवान्को ही अपना साध्य और साधन दोनों समझकर उनपर निर्भर हैं, बड़े-बड़े देवता और सिद्ध उनके पवित्र चरित्रोंका प्रेमसे गान करते रहते हैं। मेरे दूतो! भगवान्की गदा उनकी सर्वदा रक्षा करती रहती है। उनके पास तुम लोग कभी भूलकर भी मत जाना। उन्हें दण्ड देनेकी सामर्थ्य न हममें है और न साक्षात् कालमें ही।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥

(श्रीमद्भा० ६। ३। २९)

अर्थात् जिनकी जीभ भगवान्के गुणों और नामोंका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें नहीं झुकता उन भगवत्सेवाविमुख पापियोंको ही मेरे पास लाया करो।

कठोपनिषद्में उद्दालकमुनिके पुत्र नचिकेता और यमराजका प्रसंग आता है। जिसमें श्रीयमराजजी आत्म-तत्वके सम्बन्धमें की गयी नचिकेताकी जिज्ञासाका समाधान करते हुए कहते हैं कि—**नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥** अर्थात् जो नित्योंका भी नित्य है, चेतनोंका भी चेतन है और अकेला ही इन अनेक जीवोंकी

कामनाओंका विधान करता है, उस अपने अन्दर रहनेवाले पुरुषोत्तमको ज्ञानी निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको सदा अटल रहनेवाली शान्ति प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं। **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूः स्वाम्॥** अर्थात् यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचनसे न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे ही प्राप्त होता है। जिसको यह स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है; क्योंकि यह परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूपको प्रकट कर देता है।

अजामिलकी कथा

श्रीप्रियादासजीने अजामिलकी कथा संक्षेपमें निम्न दो कवित्तोंमें वर्णित की है—

धर्यौ पितु मातु नाम अजामेल साँचो भयो भयौ अजामेल तिया छूटी शुभजात की।
कियो मदपान सो सयान गहि दूरि डार्‌यो गार्‌यौ तनु वाहि सों जो कीन्हों लैकै पातकी॥
करि परिहास काहू दुष्ट ने पठाये साधु आये घर देखि बुद्धि आइ गई सातकी।
सेवा करि सावधान सन्तन रिझाय लियो नारायण नाम धरो गर्भ बाल बातकी॥ २३॥
आइ गयो काल मोह जाल में लपटि रह्यो महा विकराल यम दूत सो दिखाइये।
वोही सुत नारायण नाम जो कृपाके दियो लियो सो पुकारि सुर आरत सुनाइये॥
सुनत ही पार्षद आये वाही ठौर दौर तोरि डारे पास कह्यौ धर्म समुझाइये।
हारे लै बिडारे जाइ पति पै पुकारे कही सुनो बजमारे मति जावो हरि गाइये॥ २४॥

कवित्तोंमें वर्णित अजामिलकी कथाका भाव इस प्रकार है—

कन्नौजके आचारच्युत एवं जातिच्युत ब्राह्मण अजामिलने कुलटा दासीको पत्नी बना लिया था। न्याय-अन्यायसे जैसे भी धन मिले, वैसे प्राप्त करना और उस दासीको सन्तुष्ट करना ही उसका काम हो गया था। माता-पिताकी सेवा और अपनी विवाहिता साध्वी पत्नीका पालन भी कर्तव्य है, यह बात उसे सर्वथा भूल चुकी थी।

उस कुलटा दासीसे अजामिलके कई सन्तानें हुईं। पहलेका किया पुण्य सहायक हुआ, किसी सत्पुरुषका उपदेश काम कर गया। अपने सबसे छोटे पुत्रका नाम अजामिलने 'नारायण' रखा। बुढ़ापेकी अन्तिम संतानपर पिताका अपार मोह होता है। अजामिलके प्राण जैसे उस छोटे बालकमें ही बसते थे। इसी मोहग्रस्त दशामें मृत्युकी घड़ी आ गयी। यमराजके भयंकर दूत हाथोंमें पाश लिये आ धमके और अजामिलके सूक्ष्मशरीरको उन्होंने बाँध लिया। उन विकराल दूतोंको देखते ही भयसे व्याकुल अजामिलने पासमें खेलते हुए अपने पुत्रको कातर स्वरमें पुकारा—'नारायण! नारायण!'

'नारायण!' एक मरणासन्न प्राणीकी यह कातर पुकार सुनी भगवत्पार्षदोंने और वे दौड़ पड़े। यमदूतोंका पाश उन्होंने छिन्न-भिन्न कर दिया।

बेचारे यमदूत हक्के-बक्के देखते रह गये। उनका ऐसा अपमान कहीं नहीं हुआ था। साहस करके वे भगवत्पार्षदोंसे बोले—'आपलोग कौन हैं? हम तो धर्मराजके सेवक हैं। उनकी आज्ञासे पापीको उनके समक्ष ले जाते हैं। आप हमें अपने कर्तव्यपालनसे क्यों रोकते हैं?'

भगवत्पार्षदोंने फटकार दिया—'तुम धर्मराजके सेवक सही हो, किंतु तुम्हें धर्मका ज्ञान ही नहीं है। जानकर या अनजानमें ही जिसने 'भगवान् नारायण' का नाम ले लिया, वह पापी रहा कहाँ! इस पुरुषने पुत्रके बहाने सही, नाम तो नारायण प्रभुका लिया है; फिर इसके पाप रहे कहाँ? तुम एक निष्पापको कष्ट देनेकी धृष्टता मत करो!'